भक्त-पंचरत्न की कुंजी

जिसमें भक्तपंचरत्न के सब पद्यों के कठिन
शब्दों के अर्थ, भावार्थ और पद्यों में
निर्दिष्ट पौराणिक कथाएँ दी गई हैं

संपादक और टीकाकार
शंभुदयाल सकसेना साहित्यरत्न
और
सुन्दरमणि हिन्दी प्रभाकर

प्रकाशक
हिन्दी भवन, लाहौर

मूल्य ।।।≡)

अलंकार और छन्द की सहायक पुस्तकें

रस और अलंकार

[ले०—पं० रामबहोरी शुक्ल, ऐम. ए., साहित्यरत्न, क्वींस कालेज, बनारस]

इस पुस्तक में रस और अलंकार का कठिन विषय बड़ी सरलता-पूर्वक समझाया गया है। प्रत्येक अलंकार के लक्षण, उदाहरण तथा अलंकारों के पारस्परिक भेद विद्वान् लेखक ने बड़ी खूबी से समझाये हैं। सभी उदाहरण आजकल की खड़ी बोली की कविता से दिये गये हैं, जिससे विद्यार्थी बड़ी आसानी से उन्हें समझ सकते हैं। इसको पढ़कर हिन्दी-भूषण के विद्यार्थियों को इस विषय की और कोई पुस्तक पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती। मूल्य ।||=)

पिंगल-परिचय

[ले०—पं० रामबहोरी शुक्ल, ऐम. ए., साहित्यरत्न, क्वींस कालेज, बनारस]

इसमें 'सरल अलंकार' के सब छन्दों के लक्षण उसी छन्द में देकर उसके उदाहरण खूब समझाकर दिये गये हैं। जिससे विद्यार्थी आसानी से छन्दःशास्त्र को समझ सकते हैं।

भक्त पंचरत्न की कुंजी

पद्य संग्रह के अर्थ

कबीरदास

साखी

१. गुरु को कीजै—

शब्दार्थ—कोटि-कोटि = करोड़ों। परनाम = प्रणाम। कीट = कीड़ा। भृङ्ग = एक कीट विशेष जो कीड़ों को पकड़ लाता है और उनके ऊपर गूँज गूँज कर उन्हें अपने सदृश बना लेता है।

भावार्थ—गुरुदेव को करोड़ों दण्डवत् प्रणाम कीजिए। भला, कीड़ा भृङ्ग को क्या पहचाने जो उसे अपने समान बना लेता है। अर्थात् जिस प्रकार भृङ्ग सामान्य कीड़े को अपने समान बना लेता है, पर कीड़ा उसके महत्त्व को नहीं जान सकता, उसी प्रकार उस गुरु के महत्त्व को नादान शिष्य क्या जाने जो उसे अपने ही समान बना लेता है। ऐसे गुरु महाराज को करोड़ों दण्डवत् प्रणाम कीजिए ॥१॥

२. सब धरती कागद—

शब्दार्थ—कागद = कागज़। बनराय = बनराजि, बनस्थली, वृक्षावली। मसि = स्याही।

भावार्थ—गुरुदेव के गुण लिखने के लिए चाहे सारी पृथ्वी को कागज बना लूँ सारी बनस्थली (तमाम वृक्षों) को लेखनी

बना लूँ और सातों समुद्रों की स्याही कर लूँ तो भी क्या उनकी गुणावली का (यथावत्) उल्लेख हो सकता है ? (गुरु के गुणों का लेखा सांसारिक साधनों द्वारा तैयार किया जाना सर्वथा अशक्य है) ॥२॥

३. ऐसा कोई ना मिला—

शब्दार्थ—मीत = मित्र। मिरग = मृग, हरिण। बधिक = शिकारी।

भावार्थ—बधिक (शिकारी) के गीत सुनकर मृग अपना तन मन अर्पण कर देता है। उसी प्रकार मृग की भाँति राम-नाम पर तन मन अर्पण करने वाला सच्चा प्रेमी कोई भी नहीं मिला। (सच्चा मित्र वही है जो अपने स्नेही के लिए सर्वस्व त्याग सकता है) ॥३॥

४. सत गुरु साँचा—

शब्दार्थ—सतगुरु = सच्चा गुरु। सूरमा = शूरवीर। नखसिख = नख से शिखा तक। पूर = पूर्ण। दीसई = दिखाई देता है। चकानाचूर = चूरचूर।

भावार्थ—सतगुरु (सच्चे गुरु) ही वास्तविक सूरमा हैं जो अपने शब्द-बाण से नख से लेकर शिखा तक को पूर्णरूप से भेदन कर देते हैं। भीतर सब चूर चूर हो जाता है, पर बाण मारने की सफाई तो देखिए कहीं घाव दिखाई ही नहीं देता (आशय यही है कि गुरु के उपदेश से अन्तर कपाट खुल जाते हैं। ऐसा आन्तरिक परिवर्तन हो जाता है जो बाह्य दृष्टि से दिखाई नहीं पड़ता) ॥४॥

५. आदि नाम पारस—

शब्दार्थ—आदिनाम = परमात्मा। पारस = पत्थर विशेष, जो लोहे को स्पर्श करते ही उसे सोना बना देता है। लोह = लोहा। कंचन = स्वर्ण, सोना। मोह = अज्ञानता।

भावार्थ—परमात्मा पारस पत्थर है। मन मलिन लोहा है। जिस प्रकार पारस के स्पर्श करते ही लोहा स्वर्ण हो जाता है उसी प्रकार परमात्मा-रूपी पारस के स्पर्श से मलिन मन रूपी लोहा भी विशुद्ध होकर सांसारिक माया-मोह के बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥ ५ ॥

६. सुख के माथे—

शब्दार्थ—सिलि = शिला, पत्थर।

भावार्थ—उस सुख के सिर पर पत्थर पड़ें जिसके आते ही हृदय से परमात्मा का ध्यान उतर जाता है। और वह दुख प्रशंसनीय है जिसकी छाया में उसके नाम की रट लगी रहती है—वह कभी विस्मृत नहीं होता ॥ ६ ॥

७. लेने कौ हरि नाम—

शब्दार्थ—अनदान = अन्न का दान। तरने को = तैर जाने के लिए। बूड़न को = डूबने के लिए। अधीनता = विनम्रता।

भावार्थ—संसार में स्मरण करने के लिए एक भगवान् का नाम ही श्रेष्ठ है और देने के लिए अन्नदान ही सर्वोपरि है। संसार-रूपी समुद्र से पार होने के लिए विनम्रता ही एक साधन है और उसमें डूब मरने के लिए अहंकार ही पर्याप्त है ॥ ७ ॥

८. लूटि सकै तौ—

भावार्थ—राम नाम की लूट हो रही है, यदि तू भी लूटना चाहे तो लूट ले। जब प्राण छूट जायेंगे तो फिर पछताने के सिवाय कुछ हाथ नहीं लगेगा। अर्थात् जीवितावस्था में ही भगवद्भक्ति का लाभ उठाया जा सकता है, इसलिए इस अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए ॥ ८ ॥

९. दुख में सुमिरन—

शब्दार्थ—सुमिरन = स्मरण ।

भावार्थ—दुःख में सभी परमात्मा का नाम लेते हैं परन्तु सुख में कोई नहीं लेता । कबीरदास जी कहते हैं यदि सुख में परमात्मा का स्मरण किया होता तो दुःख होता ही क्यों ॥६॥

१०. सुमिरन की सुधि—

शब्दार्थ—दाम = पैसा । लेइ सम्हाल = सँभाल लेता है ।

भावार्थ—दीन मनुष्य अपने रुपये पैसों को बारबार सँभालता है और कभी भी उनकी देख-रेख में भूल नहीं करता । कबीर-दास जी कहते हैं कि हमें ईश्वर के नाम-स्मरण की सुधि भी उस दीन मनुष्य के समान ही रखनी चाहिए और निरन्तर भगवान् का नाम स्मरण करना चाहिए ॥१०॥

११. माला तो कर में फिरै—

शब्दार्थ—मनुवाँ = मन । दहुँ = दसों । दिसि = दिशाओं में ।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि इस प्रकार का ध्यान कोई ध्यान नहीं कहा जा सकता है कि माला तो हाथ में सटक रही है और जीभ मुँह में हिल रही है, किन्तु चंचल मन सब ओर भ्रमित हो रहा है—एक स्थान पर टिकता ही नहीं । (कबीरदास कहते हैं कि भजन तो मन, वचन, कर्म से होता है) वह भजन तो भजन नहीं कहा जा सकता है ॥११॥

१२. कबिरा गरब—

शब्दार्थ—गरब = गर्व, अभिमान । गहे = कपड़े । कर = हाथ । कित = कहाँ ।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि इस क्षणभंगुर जीवन पर गर्व न कीजिए । आपको ज्ञात होना चाहिए कि मृत्यु हर समय

हाथ में केश पकड़े हुए है; न जाने बाहर अथवा भीतर, देश अथवा विदेश में कब और कहाँ वह तुम्हें मार डाले ॥१२॥

१३. कुसल कुसल—

शब्दार्थ—जरा = बुढ़ापा। मुई = मरी। कुशल = कल्याण। मुवा = मरा।

भावार्थ—एक दूसरे से कुशल-समाचार पूछते पूछते ही इस संसार में कोई नहीं रहा। भला जरा सोचिए तो सही, जब बुढ़ापा ही नहीं मरा और मृत्यु का भय ही दूर नहीं हुआ तो कुशल कैसे हो सकती है ? (संसार में जब तक असारता है तब तक कुशलता की आशा करना दुराशा मात्र है) ॥१३॥

१४—आछे दिन पाछे गये—

शब्दार्थ—आछे = अच्छे, सौभाग्य के। पाछे गये = बीत गये। हेत = प्रेम।

भावार्थ—अच्छे दिन—युवावस्थारूपी सौभाग्य के दिन—तो बीत गए, तब तो गुरुदेव से प्रेम नहीं किया, उनका उपदेश नहीं माना। अब पछताने से क्या होता है ? जब चिड़िया खेत चुग गई, अर्थात् सुअवसर हाथ से निकल जाने पर फिर पाश्चात्ताप करने से कोई लाभ नहीं होता ॥१४॥

१५. माटि कहै कुम्हार से—

भावार्थ—मिट्टी कुम्हार से कहती है कि इस समय तू मुझे क्या रूँधता है, एक दिन ऐसा भी आने वाला है कि जिस दिन मैं तुझे रूँधूँगी। अभिप्राय यह है कि मनुष्य पंचभौतिक प्राणी है, खाक का पुतला है, और आखिर को उसे खाक में ही मिल जाना है ॥१५॥

१६. आये हैं सो जायँगे—

शब्दार्थ—रंक = दीन, गरीब।

भावार्थ—इस संसार में राजा, रंक (दीन) और साधु महात्मा जितने भी जन्मे हैं सब एक दिन इस संसार को छोड़ कर चले जायँगे। पर अपने अपने कर्मों के अनुसार कोई राजसिंहासन पर आरूढ़ होने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं, तब संसार छोड़ते हैं और कोई बन्धग्रस्त रहकर। (इस बहुरंगी दुनिया में समता नहीं हैं) ॥१६॥

१७. इक दिन ऐसा होयगा—

शब्दार्थ—घर की नारी = अपनी स्त्री। तन की नारी = शरीर की नाड़ी।

भावार्थ—इस संसार में कोई किसी का नहीं है। एक दिन ऐसा भी आयेगा जब घर की स्त्री तो क्या शरीर की नाड़ी भी अपना साथ नहीं देगी। (सचमुच इस स्वार्थी संसार में कोई अपना नहीं है, किसी को अपना कहना ही भारी भूल है। क्योंकि अवसर पर सब साथ छोड़ देते हैं) ॥१७॥

१८. माली आवत देखि के—

भावार्थ—माली द्वारा फूलों को चुने जाते देखकर बेचारी कलियाँ रो पड़ीं और कहने लगीं कि कल हमारे साथ भी यही होने वाला है। (पकी उमर के वृद्धों को एक एक करके मृत्यु उठाये लिए जा रही है, अस्फुट उमंगों वाले युवक के लिए यह दृश्य कितना मार्मिक है, जिसके अरमान अभी दिल ही में हैं। भविष्य के अवश्यम्भावी परिणाम के विचार से उसके हृदय में कितनी घोर निराशा लहरा रही है। अनूठी उक्ति है।) ॥१८॥

१९. कबिरा हँसना दूर करु—

शब्दार्थ—करु प्रीत = मन लगा।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि हँसने से दूर रह और रोने से प्रेम कर। क्यों कि बिना रोये, बिना कष्ट उठाये, प्रेमी मित्र—परमात्मा—नहीं मिल सकता ॥१६॥

२०. हबस करै पिय मिलन की—

शब्दार्थ—हबस = इच्छा, अभिलाषा। पिय = प्रीतम, परमात्मा। पद्मिनी = स्त्री। उछङ्ग = (उत्संग) गोदी।

भावार्थ—अपने प्यारे से मिलने की इच्छा करना और शारीरिक सुख की प्राप्ति चाहना दोनों कैसे संभव हो सकते हैं। बिना प्रसव पीड़ा को सहे कोई स्त्री पुत्र को गोद में नहीं खिला सकती (प्रियतम-मिलन का मार्ग सरल सुप्राप्य नहीं है, अनेक कष्टों और साधनाओं से पूर्ण है। उसे वही पा सकता है जो कष्टों की परवाह नहीं करता।) ॥२०॥

२१. जाहु बैद घर आपने—

शब्दार्थ—निर्मई = निर्मित की। वेदन = वेदना, पीड़ा।

भावार्थ—वैद्य महाराज! अपने घर पधारिए, यह पीड़ा आप से ठीक होने की ही नहीं। इसे तो वही ठीक करेगा जिसने इसका सृजन किया है। (दर्द देने वाले की दया से ही यह अनोखा दर्द दूर होगा। इसके सिवा इसकी कोई दवा नहीं हैं) ॥२१॥

२२. सीस उतारै भुइं धरै—

शब्दार्थ—उतारै = काटै। भुइँ = भूमि, पृथ्वी।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि प्रेम का मार्ग बड़ा कठिन है। यदि अपने हाथों अपना सिर काट कर पृथ्वी पर रखने और फिर उसके ऊपर पैर रख कर चलने की हिम्मत हो तभी इस मार्ग के पथिक बनो, अन्यथा इससे दूर ही रहो। इस मार्ग से कायर नहीं चल सकते हैं। यह वीरों का मार्ग है ॥२२॥

२३. प्रेम गली अति साँकरी—

शब्दार्थ—साँकरी = तंग, संकीर्ण। मैं = अहंकार। गुरु = ईश्वर।

भावार्थ—प्रेम का मार्ग बड़ा संकरा है, उसमें द्वित्वभाव का समावेश नहीं है। उसमें एकान्त तन्मयता ही रह सकती है। (क्यों कि यह प्रेमी का प्रत्यक्ष अनुभव है कि) जब तक अपनेपन अर्थात् अहंभाव की प्रतीति हो रही थी तब तक गुरु या परमात्मा (प्रियतम) का अस्तित्व नहीं था और अब जब उनकी सत्ता की प्रतीति हो रही है तब मेरा अहंभाव मिट गया है ॥२३॥

२४. जा घट प्रेम न संचरै—

शब्दार्थ—मसान = श्मशान। घट = हृदय। संचरै = संचार करे।

भावार्थ—जिस हृदय में प्रेम का संचार नहीं होता उसे श्मशान ही समझना चाहिए। वह लुहार की धौंकनी के समान बिना प्राण के साँस लेता है। (सचमुच प्रेमहीन हृदय मुर्दा ही है; केवल साँस लेना ही उसकी सजीवता का प्रमाण नहीं होना चाहिए, क्योंकि लुहार की धौंकनी भी तो साँस लेती है। कबीरजी के विचार से प्रेमी-हृदय ही सजीव समझा जाता चाहिए) ॥२४॥

२५. पीया चाहे प्रेम रस—

शब्दार्थ—पीया चाहे = पीना चाहे, पान करना चाहे।

भावार्थ—मान करना (रूठना और) प्रेम रस पीना दोनों एक साथ कैसे हो सकते हैं? एक म्यान में दो तलवार आज तक न देखी और न सुनी हैं। अर्थात् एक म्यान में जैसे दो तलवारों का रहना असम्भव है उसी तरह मान की भावना को ले कर प्रेम के आनन्द को उठाया नहीं जा सकता। उसके उपयोग के लिए तो अपनी उच्चता के भाव को छोड़ना ही होगा ॥२५॥

२६. साईं इता दीजिये—

शब्दार्थ—कुटुँब समाय = परिवार का भरण पोषण हो जाय।

भावार्थ—हे प्रभो, हमें तो इतना ही दीजिए जिसमें कुटुम्ब का पालन हो जाय। न मैं स्वयं भूखा रहूँ और न घर पर आए हुए साधु सन्त ही भूखे जावें ॥२६॥

२७. अवगुन मेरे बापजी—

शब्दार्थ—बापजी = पिताजी, प्रभु। बगसु = क्षमा कर। गरीब-निवाज = दीन-दयालु, दीनों पर दया करने वाले। कपूत = कुपुत्र, अयोग्य, नालायक। तऊ = तो भी।

भावार्थ—हे दीनों पर दया करने वाले परम पिता! मेरे अवगुणों को क्षमा कीजिए। यह ठीक है कि मैं आपका अयोग्य पुत्र हूँ, तो भी इसकी आपको ही लज्जा होनी चाहिये। क्योंकि योग्य पिता का अयोग्य पुत्र होना पिता के लिए ही लज्जा का विषय है ॥२७॥

२८. सिख तो ऐसा—

शब्दार्थ— सिख = शिष्य।

भावार्थ—शिष्य ऐसा होना चाहिए जो गुरु को सर्वस्व अर्पण कर दे पर गुरु को भी ऐसा उदार और महान् होना चाहिए कि वह शिष्य से कुछ भी न ले ॥२८॥

२९. सिंहों के लहँड़े नहीं—

शब्दार्थ—लहँड़े = समुदाय, झुंड। पाँत = पंक्ति। जमात = साधुओं का समुदाय।

भावार्थ—सिंहों के झुंड के झुंड नहीं चलते—जैसे मृग शूकर आदि चलते हैं। हँसों की कतारों की कतारें नहीं उड़तीं—जैसे बगुले इत्यादि की उड़ा करती हैं। लाल (रत्न) इतनी प्रचुर

मात्रा में नहीं होते जो बोरियों में भरे जाते हों। इसी प्रकार साधु भी टोल के टोल नहीं चलते। जो भीड़ की भीड़ चलते हैं वे संसारत्यागी संन्यासी नहीं हैं।

कबीरदास जी के कहने का अभिप्राय यह है कि बलवान्, सौंदर्यशाली, बहुमूल्य तथा गुणी दुनिया में बहुत कम ही होते हैं। ऐसे ही साधु भी बहुत कम होते हैं। आजकल के साधुनामधारियों को तरह उनके झुंड के झुंड इधर उधर नहीं भटकते रहते। सच्चे साधु का तो मिलना ही दुर्लभ है ॥२६॥

३०. गाँठी दाम न बाँधई—

शब्दार्थ—गाँठी = गाँठ। नेह = स्नेह। खेह = धूल।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं, हम उन साधुओं के चरणों की धूल हैं जो कभी गाँठ में पैसा नहीं बाँधते और न स्त्री से प्रेम करते हैं। वास्तव में सच्चे साधु के यही लक्षण हैं। पर जो सांसारिक लोगों की तरह धन-संग्रह में लगा है और स्त्रियों से लौकिक वासनात्मक प्रेम सम्बन्ध रखता है, वह साधु कैसा? ॥३०॥

३१. कबिरा संगति साधु की—

शब्दार्थ—साधु = सज्जन। व्याधि = शारीरिक कष्ट, पीड़ा। आठों पहर = दिन रात। उपाधि = कलह, झगड़ा।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि दूसरों के कष्ट को हरण करने वाली साधु की संगति ही अच्छी है। दिन रात कलह करने वाली असज्जनों की संगति ठीक नहीं। उससे तो दूर ही रहना चाहिए ॥३१॥

३२. कबिरा संगति साधु की—

शब्दार्थ—गंधी = इत्र बेचने वाला। सुवास = सुगंध।

भावार्थ—इत्र बेचने वाले के पड़ोस में बसना ही पर्याप्त है।

वह यदि कुछ भी न देगा तो भी सुगन्ध तो मिलेगी ही। कबीर-दास जी कहते हैं कि इसी प्रकार साधु का सत्संग भी है। उसके सत्संग से अकारण ही लाभ होंगे ॥३२॥

३३. द्वार धनी के पड़ि रहै—

शब्दार्थ—द्वार = दरवाजा। धनी = मालिक, स्वामी, परमात्मा। निवाजई = पसीजेगा, दया करेगा।

भावार्थ—स्वामी के दरवाजे पर पड़े रहो, उसी की ठोकरें खाते रहो। जो द्वार छोड़कर कहीं न जाओगे तो वह एक न एक दिन अवश्य पसीजेगा और एक बार तो निहाल कर देगा ॥३३॥

३४. सिर राखे सिर जात—

शब्दार्थ—सिर = देह का मोह। सिर = मर्यादा, आन।

भावार्थ—देह का मोह करने से मान-मर्यादा नष्ट हो जाती है। सिर काटने से ही सिर की शोभा होती है। जैसे दीपक की बत्ती का सिरा कट जाने पर ही अधिक प्रकाश होता है।

यहाँ कबीरदास जी का कहना है कि जीना है तो मरना सीखो। जो जाति या राष्ट्र मरने से नहीं घबड़ाता वही जीवित रह सकता है। अन्यथा मान-मर्यादा की रक्षा कठिन ही नहीं असम्भव है ॥३४॥

३५. सूरा नाम धराइ कै—

शब्दार्थ—सूरा = शूरवीर। नाम धराइकै = कहला कर। डरपै = भयभीत होता है। मँडि रहना = सज्जित रहना, कायम रहना, स्थिर रहना। मैदान = रणक्षेत्र।

भावार्थ—अपने को शूरवीर कहलाकर, शूरवीर नाम धराकर हे वीर! अब क्यों भयभीत होता है? इस प्रकार डरना वीरों को

शोभा नहीं देता। यह समय तो रणक्षेत्र में डटकर सम्मुख तीर सहने का है ॥३५॥

३६. पतिबरता पति को भजै—

शब्दार्थ—पतिबरता = पतिव्रता, सती। लंघना = भूखा।

भावार्थ—पतिव्रता अपने पति को ही भजती है—एक मात्र उसे ही चाहती है, दूसरा उसे सुहाता ही नहीं; जैसे सिंह का बच्चा चाहे भूखा ही क्यों न हो परन्तु कभी घास नहीं खाता॥ ॥३६॥

३७. मैं सेवक समरत्थ का—

शब्दार्थ—समरत्थ = शक्तिमान। अकाज = अकार्य। उघरी = नग्न, बिना वस्त्र।

भावार्थ—मैं उस सर्वशक्तिमान का सेवक हूँ इसलिए मेरा अकाज कभी नहीं हो सकता। यदि ऐसा हो जाय तो उसी प्रभु की हँसी होगी। जैसे यदि पतिव्रता स्त्री के पास तन को ढकने के लिए वस्त्र न हों तो उसके पति को लज्जा से मरना पड़ेगा ॥३७॥

कबीर जी का कहना है कि जो परमात्मा का अनन्य भक्त होता है वह अपने कार्य में कभी असफल हो ही नहीं सकता, क्योंकि उसकी असफलता उसके प्रभु की असफलता की परिचायक है ॥३७॥

३८. लाली मेरे लाल—

शब्दार्थ—लाल = परमात्मा, शिशु, बच्चा। लाली = प्रकाश, कान्ति, लड़कपन।

भावार्थ—मेरे लाल की कान्ति जिधर देखती हूँ, उधर ही प्रकाशित हो रही है। उसकी उस छबि का दर्शन करने के लिए जो मैं निकली तो स्वयं मैं भी उसकी कान्तिरूप हो गई, उसकी छवि की अरुणिमा में मेरा अस्तित्व एक होकर मिल गया ॥३८॥

३९. जो तोको काँटा—

शब्दार्थ—तिरसूल—भाला।

भावार्थ—जो तेरे लिए काँटा बोता है उसके लिए तू फूल बो; अर्थात् जो तेरी बुराई करता है उसकी तू भलाई कर। तुझे फूल के बदले फूल— भलाई के बदले भलाई—मिलेगी और उस काँटे बोने वाले को भाले ही मिलेंगे—अर्थात् उसे बुराई का बुरा फल ही मिलेगा ॥३९॥

४०. दुर्बल को न—

शब्दार्थ—मोटी हाय=दर्दनाक आह, हृदय को हिला देनेवाली आर्त पुकार।

भावार्थ—निर्बल को कभी न सताइए, उसकी आह बड़ी जोरदार होती है। देखिए बिना प्राण की खाल की स्वाँस से लोहा भी भस्म हो जाता है। जब निर्जीव की आह का ऐसा प्रभाव है तो फिर सजीव की आर्त पुकार का क्या कहना! दीनों की हाय कभी खाली नहीं जाती! ॥४०॥

४१. ऐसी बानी बोलिए—

शब्दार्थ—आपा=अहंकार।

भावार्थ—मन का अहंकार दूर करके ऐसी बाणी बोलिए जो दूसरों को शान्तिप्रद हो और जिससे अपना मन भी शान्त रहे। आशय यही है कि मीठी बोली बड़ी उपयोगी होती है जो सुनने-वाले और बोलने वाले दोनों को सुहाती है। और वह तभी संभव है जब मन के के अहंकार के भाव का नाश हो जाय ॥४१॥

४२. आवत गारी एक है—

शब्दार्थ—गारी=गाली।

भावार्थ—गाली आते समय तो अकेली होती है, पर प्रत्युत्तर पर अनेक हो जाती है। कबीरदास जी कहते हैं गाली का उत्तर गाली से न दीजिए तो वह फिर एक की एक ही रह जायगी। अर्थात् गाली का उत्तर यदि गाली में न दिया जाय तो किसी प्रकार आगे विवाद ही न बढ़ने पावेगा ॥४२॥

४३. साधू ऐसा चाहिए—

शब्दार्थ—सूप = छाज।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि साधु सूप के से स्वभाव का होना चाहिए। जैसे सूप सार सार ग्रहण कर लेता है और निरर्थक को दूर उड़ा देता है, इसी प्रकार साधुवृत्ति में तत्त्वग्राहिणी बुद्धि का प्रसार होना चाहिए ॥४३॥

४४. बंदे तू कर बंदगी—

शब्दार्थ—बन्दे = भक्त, मनुष्य। बंदगी = भक्ति, वन्दना। दीदार = दर्शन। औसर—अवसर, मौका। बहुरि = फिर।

भावार्थ—ऐ मानव! परमात्मा की बन्दगी करके ही तू उस का दर्शन पा सकता है। स्मरण रख, मनुष्य-जीवन प्राप्त करके भगवान् की भक्ति का ऐसा स्वर्ण अवसर फिर बार बार नहीं आता। अर्थात् मनुष्य-जीवन में ही भक्ति करके हम उसके अलभ्य दर्शनों का लाभ उठा सकते हैं ॥४४॥

४५. साधु भया तो क्या भया—

शब्दार्थ—भया—हुआ। पराई—दूसरे की। हतै—हनन करे, मारे।

भावार्थ—साधु होने से क्या हुआ, यदि विवेकपूर्वक बोलना नहीं जानता। भला यह साधुता कैसी; जो अपनी जीभ पर तलवार बाँधकर पराई आत्मा का हनन करती है अर्थात् वह साधु वेशधारी होने पर भी साधु नहीं हो सकता जो अपनी कठोर

वाणी से दूसरों की आत्मा को चोट पहुँचाता है। साधु वही है जो अपनी मधुर संयत वाणी से दूसरों की आत्मा को प्रसन्न करता है ॥४५॥

४६. मधुर वचन है ओषधी—

शब्दार्थ—कटुक = कडुवे। स्रवन = कर्णपुट, कानों के छेद। साले = खटके, पीड़ा पहुँचावे। सकल = तमाम।

भावार्थ—मीठी बोली ओषधि स्वरूप है और कडुवे वचन तीर के तुल्य हैं, जो कानों के द्वार से भीतर प्रवेश करके सारे शरीर को पीड़ित कर डालते हैं ॥४६॥

४७. पढ़ना गुनना चातुरी—

शब्दार्थ—काम-दहन = काम वासना को रोकना। सहल = सरल। मुसकल = मुश्किल। गगन = आकाश।

भावार्थ—अध्ययन, मनन और चतुराई ये तो बहुत ही आसान कार्य हैं। (संसार में) यदि कुछ मुश्किल बातें हैं तो कामवासना को रोकना, मन को काबू में करना और आकाश में चढ़ना है ॥४७॥

४८. हीरा तहाँ न खोलिए—

शब्दार्थ—हाट = बाजार। बाट = मार्ग।

भावार्थ—हीरे का प्रदर्शन वहाँ कभी मत करो जहाँ साहूकारों का बाजार न हो। उचक्कों के बाजार में पहुँचजाने पर उसे अच्छी तरह बाँध लो और उठकर वहाँ से तुरन्त चल दो। (अन्यथा ऐसे खोटे बाजार में तुम्हारे ठगे जाने का भय है।) ॥४८॥

४९. हीरा पाया परखि कै—

भावार्थ—बहुत खोज बीन के बाद हीरे की प्राप्ति हुई। उसे लेकर परीक्षार्थ घन (हथौड़े) की चोटें देकर देखा; जब वह नहीं टूटा तब उसकी असलियत का पता चला ॥४९॥

५०. हंसा बगला एक सा—

शब्दार्थ—ढँढोरै = तलाश करता है।

भावार्थ—मानसरोवर झील में हंस और बगुलों की पहचान नहीं होती, क्योंकि स्वरूप में दोनों एक से हैं। पर उस समय उनकी पहचान हो जाती है, जब बगुले झील में मछलियों को तथा हँस मोतियों को ढूँढने लगते हैं ॥५०॥

५१. या दुनिया में आई के—

शब्दार्थ—ऐंठ—अभिमान। पैंठ—बाजार।

भावार्थ—इस दुनिया में आकर तू घंमड को छोड़ दे। जो कुछ लेना है ले ले नहीं तो हाट उठने वाली है। अर्थात् इस दुनिया में आकर जो कुछ धर्म-कर्म करना हो शीघ्र कर लो नहीं तो इस जीवन की पैंठ उठ जाने पर कुछ भी न हो सकेगा ॥५१॥

५२. हरिजन तो हारा भला—

शब्दार्थ—हरिजन—हरि का भक्त। लार—पाश, डोरी।

भावार्थ—हरि का भक्त हारा ही अच्छा है, संसार को विजयी होने दो। अन्त में हारा (भक्त) सतगुरु परमात्मा को प्राप्त करेगा और विजयी यम के पाश में बँधेगा। अर्थात् सांसारिक ऐश्वर्य से विमुख हरिभक्त ईश्वर को प्राप्त करता है। तथा अनेकों दोषों से प्राप्त ऐश्वर्य को पाकर अपने को विजयी समझने वाले लोग, अन्त में नरक को प्राप्त करते हैं। इसलिए ऐसे ऐश्वर्य से विजयी होने की अपेक्षा इससे हारा हुआ हरिभक्त लाख दर्जे अच्छा है जो हारने पर भी विजयी है और ईश्वर को प्राप्त करता है ॥५२॥

५३. माँगन मरन समान है—

भावार्थ—माँगना और मरना बराबर हैं इसलिए कोई भीख

मत माँगो। भीख माँग कर खाने से भूखों मर जाना अच्छा है। सच्चे गुरु की यह शिक्षा यथार्थ है ॥५३॥

५४. साँच बराबर तप नहीं—

भावार्थ—सत्य के समान कोई तप नहीं है, और झूठ के बराबर कोई पाप नहीं है। जिसके हृदय में सत्य है उसके हृदय में स्वयं परमात्मा निवास करता है ॥५४॥

५५. साँचे स्राप न लागई—

भावार्थ—सच्चे आदमी को अभिशाप नहीं लगता, और सच्चे को काल भी नहीं खाता, वह त्रिकाल तक जीता रहता है। सच्चे को ही सच्चा मिलता है, और सच्चे की गति सत्य में ही होती है ॥५५॥

५६. साँचे कोई न पतीजई—

शब्दार्थ—पतीजई—विश्वास करता है। पतियाय—पतियाता है, विश्वास करता है। गोरस—दही दूध। मदिरा—शराब।

भावार्थ—आजकल सच्चे का कोई विश्वास नहीं करता; झूठे को सब पतियाते हैं। देखो न, दही दूध तो गली गली मारा मारा फिरता है—अर्थात् दही दूध बेचने वालों को उन्हें बेचने के लिए गली गली में पुकार लगानी पड़ती है; परन्तु शराब बैठे-बिठाए बिक जाती है। ग्राहक दुकान पर दौड़े चले आते हैं। कलाल को उसे बेचने के लिए कहीं जाना आना नहीं पड़ता ॥५६॥

५७. लेखा देना सहज है—

शब्दार्थ—लेखा देना—हिसाब देना। साईं—स्वामी, प्रभु, परमात्मा। पला—पल्ला।

भावार्थ—यदि दिल सच्चा है तो फिर परमात्मा के दरबार में

हिसाब देना—पाप पुण्य का लेखा देना—कोई कठिन काम नहीं है। ऐसी दशा में फिर कोई भी उसके दरबार में जाने से रोकने वाला नहीं है। भला, सच्चे का पल्ला कौन पकड़ सकता है ? ऐसा कौन है जो उसे रोक सके ॥५७॥

५८. देह धरे का गुन यही—

शब्दार्थ—देह धरे = शरीर धारण करने का। गुन = गुण, फल, उपयोग। देह देह = देह से कुछ दान करे। देह = शरीर

भावार्थ—शरीर धारण करने का यही उपयोग है कि उससे कुछ परोपकार किया जाय—कुछ दिया जाय। इस समय देह धारण करने से जो कुछ उपकार हो गया सो हो गया क्योंकि फिर मनुष्य देह मिलना कठिन है ॥५८॥

५९. सीलवंत सब तें बड़े

शब्दार्थ—सीलवंत = शीलवान्, विनम्र, सुशील। रतन = रत्न।

भावार्थ—शीलवान् सब से बड़ा है और सब रत्नों का वह भंडार है। तीनों लोकों की संपदा शील में निवास करती है ॥५९॥

६०. छिमा बड़ेन को चाहिये—

शब्दार्थ—छिमा—क्षमा। उतपात—उपद्रव।

भावार्थ—छोटों का काम उत्पात करना और बड़ों का काम क्षमा करना है। देखिए भृगु ने विष्णु के लात मारी, पर क्या इससे विष्णु का मान कुछ कम हो गया ? अर्थात् छोटों के अपराध को यदि बड़े लोग क्षमा कर देते हैं तो इससे उनके मान में कमी नहीं आती प्रत्युत उनका मान और अधिक बढ़ जाता है। इसलिए छोटों को क्षमा करने में ही बड़ों की शोभा है ॥६०॥

नोट—भृगु के लात मारने की कथा परिशिष्ट में देखिए।

६१. चाह गई चिन्ता मिटी—

शब्दार्थ—मनुवाँ = मन। साहन्साह = बादशाह।

भावार्थ—जिनकी इच्छाओं का अन्त हो गया, चिन्ताएँ जिन्हें सताती नहीं, जिनका मन बेपरवाह है और जिन्हें कुछ नहीं चाहिए ऐसे अलोलुप व्यक्ति ही वस्तुतः बादशाहों के बादशाह होते हैं। (धनसंपत्ति के नाते चाहे उनके पास फूटी कौड़ी भी न हो) ॥६१॥

६२. बड़ा हुआ तो क्या हुआ—

भावार्थ—खजूर के वृक्ष के समान बड़ा होने से क्या लाभ ? जिससे न पक्षियों को छाया मिलती है और न मनुष्यों को फल। (क्योंकि फल उसके इतने दूर लगते हैं जो सहज ही में तोड़े नहीं जा सकते।) अर्थात्—उस महान और बड़े आदमी का कुछ लाभ नहीं जिससे उसके आश्रितों को कुछ लाभ नहीं पहुँचता। बड़ा वही है जो छोटों को अपनी छाया दान करे ॥६२॥

६३. कबिरा जोगी जगतगुरु—

शब्दार्थ—आस = आशा, कुछ लेने की अभिलाषा।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि जो साधु संसार से कुछ भी लेने की इच्छा नहीं करता वही जगत् गुरु है और जो संसार से कुछ लेने की इच्छा रखता है, वह योगी होते हुए भी संसार का गुलाम है ॥६३॥

६४. चलौ चलौ सब कोई कहै—

शब्दार्थ—कनक—स्वर्ण, सोना। कामिनी—स्त्री। दुरगम—अगम, कठिन, मुश्किल से पार होने योग्य। विरला—एक आध।

भावार्थ—संसार के स्रष्टा तक पहुँचने को सभी लालायित हैं। किन्तु इन असंख्यों में उस तक पहुँचने वाले बड़ी मुश्किल से कोई एक दो हैं। क्योंकि कनक और कामिनी ये दो घाटियाँ उसके

मार्ग में पड़ती हैं जो बड़ी दुर्गम हैं। इन्हें पार करना सबका काम नहीं है ॥६४॥

६५. पर नारी पैनी छुरी—

शब्दार्थ—परनारी—दूसरे की स्त्री। लावौ अंग—शरीर से लगाओ।

भावार्थ—दूसरे की स्त्री पैनी छुरी के समान है, इसलिए उसका आलिंगन न कीजिए, उसे गले से न लगाइए। देखो, पराई स्त्री के कारण ही रावण जैसा वीर नष्ट हुआ। उसके दस सिर काट डाले गये ॥६५॥

६६. निंदक नियरे राखिये—

शब्दार्थ—नियरे—निकट। कुटी—झोंपड़ी।

भावार्थ—निंदक को सदा अपने पास रखिए, उसके लिए अपने आँगन में ही कुटी बना दीजिए। क्योंकि वह बिना पानी और साबुन के स्वभाव को निर्मल कर देता है। (निंदक को पास रखने से हमें अपनी निंदा सुनने को मिलती है, जिससे हम अपनी कुटेवों का परिष्कार कर सकते हैं। लोग निंदकों से व्यर्थ ही भयभीत होते हैं और उन पर क्रोध करते हैं) ॥६६॥

६७. बुरा जो देखन मैं चला—

शब्दार्थ—मिलिया—मिला।

भावार्थ—मैं बुरे की तलाश में निकला, परन्तु मुझे कोई भी बुरा नज़र नहीं आया। जब हारकर मैं स्वयं अपने को देखने लगा तो मैंने देखा कि मैं ही तो सबसे गया बीता हूँ ॥६७॥

६८. बड़ा बड़ाई न तजै—

शब्दार्थ—इतराव—अभिमान करता है। प्यादा—पैदल, सिपाही। फरजी—वजीर।

भावार्थ—बड़ा आदमी बड़ा पद पाने पर भी अपनी मर्यादा

को नहीं छोड़ता और छोटा थोड़ा सा अधिकार पाने पर ही इतराने लगता है। जैसे शतरंज के खेल में जब प्यादा वजीर बन जाता है तो वह टेढ़ा चलने लगता है ॥६८॥

६९. मन के मते न—

शब्दार्थ—मते—शिक्षानुसार। मते—सीख, सिखावन। असवार—सवार, काबू रखता है।

भावार्थ—मन की शिक्षानुसार कार्य करना उचित नहीं है; क्योंकि मन की शिक्षाएँ बहुत होती हैं। उसका कोई एक निश्चित मत नहीं है। संसार में ऐसे महापुरुष कोई कोई ही होते हैं जो अपने मन पर काबू रखते हों ॥६९॥

७०. मन के मारे बन—

भावार्थ—मन की वजह से तो वनवास पसन्द किया था, कि वन में रहने से यह चंचल मन शान्त और स्थिर रहेगा, पर यह क्या ? वन छोड़ कर अब फिर बस्ती की ओर क्यों ? कबीरदास कहते हैं कि आखिर किया क्या जाय ? यह मन ही ऐसा है कि कहीं ठहरता ही नहीं ॥७०॥

७१. कबिरा सोया क्या करै—

शब्दार्थ—चौंप—उत्साह। सौंप—सुपुर्द कर।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि सोया क्यों पड़ा है ? जगने को उत्साहित हो। ये तेरे साँस नहीं हैं, ये तो बहुमूल्य लाल और हीरे हैं। इन्हें गिन गिन कर परमात्मा को समर्पण कर दे। अर्थात् हर घड़ी उसी का भजन कर और एक साँस भी व्यर्थ न जाने दे ॥७१॥

७२. मांस अहारी मानवा—

शब्दार्थ—मांस अहारी—मांसभक्षी, मांसखाने वाले। मानवा—मनुष्य। परतछ—प्रत्यक्ष। राछस अंग—राक्षस रूप।

भावार्थ—मांसभक्षी लोग साक्षात् राक्षस रूप हैं, उनकी संगति कभी न करो क्योंकि उनकी संगति से आनन्द में बाधा पड़ती है ॥७२॥

७३. हिंदू के दाया नहीं—

शब्दार्थ—मिहर—रहम। तुरुक—मुसलमान। लख चौरासी—चौरासी लाख योनियाँ।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि हिन्दुओं में दया नहीं है मुसलमानों में रहम नहीं है, इसी से ये दोनों चौरासी लाख योनियों में भटकते फिरते हैं। अर्थात् दया ही एक ऐसी वस्तु है जो मनुष्य को चौरासी लाख योनियों में भटकने से बचाती है ॥७३॥

७४. कबीर मतवाला नाम का—

शब्दार्थ—मतवाला—पागल। मद मतवाला—शराबी, मद्यपेयी। नाम-पियाला—भगवान् का नाम रूप अमृत प्याला। मतवाला—मत-मतान्तरों को मानने वाला या नशेबाज़।

भावार्थ—कबीर तो भगवान के नाम का पागल है, वह मद्य पीने वाला पागल नहीं है। जिसने भगवान् का नाम रूप अमृतप्याला पी लिया है वह मतवाला नहीं हो सकता ॥७४॥

७५. रूखा-सूखा खाइकै—

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं अपना रूखा-सूखा खाकर और ठंडा पानी पीकर सन्तोष कर। दूसरे की चुपड़ी हुई देख कर अपना जी न ललचा ॥७५॥

७६. संस्किरत है कूप-जल—

शब्दार्थ—संस्किरत—संस्कृत। भाषा--हिन्दी। कूपजल--कुएँ का जल अर्थात् बँधा हुआ जल। नीर—जल। सतगुरु सहित--यथार्थ गुरुता सहित। सतमत--सत्य धर्म। गहिर—गहरा।

भावार्थ--संस्कृत कुएँ के बँधे हुए जल के सदृश है, हिन्दी बहते हुए पानी के समान प्रगतिशील है इसलिए हिन्दी ही यथार्थ गुरुता सहित है--उसका ही महत्व अधिक है। इसी प्रकार सच्चा मत ही गहरा और गंभीर है--उसी में गुरुता है, और सब बँधे हुए जल के समान हैं ॥७६॥

७७. पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ—

शब्दार्थ—मुआ--मर गया। ढाई अच्छर—ढाई अक्षर।

भावार्थ--सारा संसार पुस्तकें पढ़-पढ़ कर मर गया पर पंडित कोई भी न हुआ। केवल जिसने प्रेम के ढाई अक्षर का पाठ पढ़ लिया है वही पंडित है, और सब यों ही पुस्तकें रट रट खप गए। (पांडित्य तो विश्वमैत्री भाव में ही रहता है) ॥७७॥

७८. एकै साधे सब सधै—

शब्दार्थ—साधे-साधना करने से, वश में करने से। अघाय-तृप्त।

भावार्थ—एक को वश में करने से सब वश में हो जाते हैं और सब को वश में करने से कोई भी वश में नहीं रहता। यदि पत्ते पत्ते को सींचोगे तो इससे क्या लाभ? वृक्ष की जड़ को सींचोगे तो फल फूलों से तृप्त हो जाओगे। अर्थात् तैंतीस करोड़ देवी देवताओं को पूजोगे तो कोई भी प्रसन्न न होगा और यदि एक परमात्मा की उपासना करोगे तो उससे निहाल हो जाओगे, फिर किसी दूसरे की उपासना की आवश्यकता ही न रहेगी और दूसरे स्वतः ही सन्तुष्ट हो जावेंगे ॥७८॥

७९. सपने में साईं मिले—

शब्दार्थ—साईं—स्वामी, प्रभु। डरपता—डरता हुआ।

भावार्थ—मुझे स्वप्न में मेरे स्वामी मिले। उन्होंने मुझ सोते को जगा लिया। परन्तु मैं इस भय से आँखें नहीं खोलता कि कहीं यह सपना न निकले। अर्थात् आँखें खुलते ही वे अदृश्य न हो जायँ और मैं उनके साक्षात्कार से वंचित रह जाऊँ ॥७९॥

८०. साँझ पड़े दिन बीतवै—

शब्दार्थ—सांझ—सन्ध्या, शाम। चकवी—चकोरी, बुद्धि। चकवा—चकोर; जीवात्मा। देस—मुल्क, सत्य लोक। रैन—रात।

भावार्थ—दिन बीत जाने और सन्ध्या के आ जाने पर चकवी वियोग के दुःख से रो पड़ी और कहने लगी हे चकवा, उस देश को चल जहाँ कभी रात नहीं होती। (रात न होगी तो चकवा चकवी का कभी वियोग न होगा। कहते हैं कि रात्रि में चकवा और चकवी का वियोग हो जाता है वे पास रहते हुए भी एक दूसरे से नहीं मिल सकते।)

अज्ञानरूपी संध्या के आने पर बुद्धिरूपी चकवी रो पड़ी और जीवात्मा रूपी चकवे से कहने लगी, हे जीव! उस सत्यलोक को चलो जहाँ अज्ञानरूपी अन्धकार कभी दिखाई ही नहीं देता—जहाँ अज्ञान रात्रि होती ही नहीं ॥८०॥

शब्द

८१. बीती बहुत रहि थोरी सी—

नोट—मूल पुस्तक में इस शब्द की अन्तिम पंक्ति में 'ऐरी सी' छपा; है; वह अशुद्ध है। 'ऐरी सी' के स्थान पर 'भौंरी सी' शुद्ध पाठ है।

शब्दार्थ—झींखन लागे=खीझने लगा, पछताने लगा। चोरी सी=धीरे से। देत है भौंरी सी=चक्कर से दे रही है, मँडरा रही है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं हे सन्त जनो! सुनो। बहुत कुछ अवस्था बीत गई, अब थोड़ी सी शेष है। सिर पर मौत मँडरा रही है। खाट पर पड़ने पर मनुष्य खीजने लगा। प्राण चोरी चोरी ही निकल गए। भाई-बन्धु और तमाम कुटुम्ब के लोग आए और उन्होंने मृत शरीर को होली की तरह फूँक डाला ॥८१॥

विशेष—यहाँ कबीरदास जी शरीर की असारता तथा नश्वरता का उपदेश कर रहे हैं।

८२. बहुत दिनन में प्रीतम आये—

शब्दार्थ—प्रीतम=पति, प्रिय। मंगलचार=मंगलाचार। रसना =जिह्वा। सूती=सोई हुई।

भावार्थ—बड़े दिनों के बाद आज मैंने प्रियतम को अनायास ही पा लिया। आज मेरा सौभाग्य है। वे घर बैठे ही मुझे प्राप्त हो गये। ऐ मन, आज आनन्द-मग्न हो जा; आज उनके नाम के रस का आस्वादन कर। आज मेरा निवास-भवन प्रकाशमान हो रहा है; आज मैं अपने प्यारे के साथ शय्यासीना हूँ—लेटी हूँ। हे मेरे प्यारे, तुम्हारे स्थान पर यदि मुझे नवनिधियाँ तक मिल जाती तो मैं प्रसन्न न हो पाती। मैं आपकी कहाँ तक प्रशंसा करूँ। मैंने तो आपकी प्राप्ति के लिए कुछ भी नहीं किया था। आपने बिना कुछ किये ही मेरे ऊपर अपनी कृपाओं की वर्षा कर दी मुझे सौभाग्यशालिनी कर दिया।

विषय—यहाँ कबीरदास जी ने आत्मा और परमात्मा को प्रीतम और प्रियतमा के रूप में वर्णन किया है। आत्मा का परमात्मा से चिर-काल का वियोग है। आत्मा ने परमात्मा से मिलने के लिए कुछ उद्योग

नहीं किया पर फिर भी उसे उसका प्रीतम मिल गया। इस प्रकार के संयोग से आत्मा को अलौकिक आनन्द का अनुभव हुआ। उसी का यहाँ पति-पत्नी के संयोग रूप आनन्द का स्वरूप देकर पत्नी के मुख से पति की बड़ाई और उसके आनन्द का वर्णन किया गया है ॥८२॥

८३. सूर संग्राम को देखि भागै नहीं—

नोट—मूल पुस्तक में प्रथम पंक्ति में 'एक' के स्थान में 'सूर' पाठ होना चाहिए।

शब्दार्थ--सूर--शूरवीर, सच्चा भक्त। संग्राम--युद्ध, भक्ति मार्ग। साही--कवच, सिपाही। नाम समसेर—नाम रूपी तलवार।

भावार्थ--सच्चे योद्धा युद्ध से नहीं भागते। जो रणक्षेत्र से पीठ दिखा कर भाग जाते हैं वे सच्चे वीर नहीं हैं अर्थात् भक्ति मार्ग से अनेकों विपत्तियाँ पड़ने पर भी जो विचलित नहीं होता वही सच्चा ईश्वर-भक्त है। भक्ति के युद्धक्षेत्र में काम, क्रोध, मद, लोभ, अहंकार आदि से घमासान युद्ध छिड़ा हुआ है; उनके साथ भक्त-रूपी वीर को लड़ना पड़ता है। शील, सन्तोष और सत्य कवच या सिपाही का काम देते हैं। परमात्मा का नाम रूपी तलवार वहाँ (भक्ति के युद्ध क्षेत्र में) खूब चलती है। कबीरदास जी कहते हैं इस युद्ध में कोई शूरवीर ही लड़ेगा। कायर तो तुरन्त भीड़ पड़ते ही भाग जायगा ॥८३॥

विशेष--यहाँ कबीरदास जी ने भक्ति मार्ग की युद्ध-क्षेत्र से और भक्त की शूरवीर से तुलना करके दिखाया है कि भक्ति मार्ग सहल नहीं है—उसमें चलना टेढ़ी खीर है। जिस प्रकार युद्ध में कोई सच्चा शूरवीर ही ठहर सकता है, उसी प्रकार भक्ति मार्ग में भी कोई सच्चा भक्त ही चल सकता है। इसलिए झूठा भक्त बनने का स्वाँग नहीं रचना चाहिए, नहीं तो पछताना पड़ेगा।

८४. मन लागो मेरो यार फकीरी में—

शब्दार्थ—गुजरान—गुजारा। रहनि—निवास। सबूरी—सन्तोष। मगरूरी—अभिमान। साहिब—परमात्मा।

भावार्थ—हे मित्र! मेरा मन तो फकीरी में लग गया है। जो सुख मैंने परमात्मा के नाम स्मरण में पाया है, वह सुख अमीरी में भी नहीं है। देखो, फकीरी कैसी अच्छी है! इसमें, सब का भला बुरा—ऊँच नीच वचन—सहन करो और गरीबी में ही गुजारा करो। हमारा निवास तो प्रेम के नगर में है। सन्तोष में ही हमें सब प्रकार की भलाई प्राप्त होती है। हाथ में कूँडी है, बगल में सोटा है और चारों दिशाओं में—सर्वत्र ही—अपनी जागीर है; जहाँ डेरा डाल दिया वहीं अपना स्थान बन गया। हे जीव! अन्त को यह शरीर खाक में मिल जायगा। इसलिए क्यों घमंड में फिरता है? कबीरदासजी कहते हैं कि हे सन्तो! सुनो, परमात्मा सन्तोष में ही मिलते हैं ॥८४॥

विशेष—यहाँ कबीरदास जी ने फकीरी को अमीरी से बढ़ कर बताया है, फकीरी में निश्चिंतता, शान्ति और आनन्द है। उसमें अमीरी की भाँति नाना चिंताएँ निवास नहीं करतीं।

८५. जागु पियारी अब का सोवै—

शब्दार्थ—पियारी—प्रिया, आत्मा। रैन—रात्रि। बौरी—पगली। सँवारी—सजाई। धन—स्त्री या आत्मा। सबद-बान—शब्द बाण।

भावार्थ—हे प्रिया! उठ जाग। अब रात बीत गई है, दिन निकल आया है। यह सोने का समय नहीं है। अर्थात् हे अज्ञान में पड़ी जीवात्मा! अब सजग हो जा। अज्ञान-रात्रि का अन्त होगया है। जो जागा है—सचेत हुआ है—उसने ही भक्तिरूपी माणिक पाया है। तू ऐसी पगली है कि तूने सोकर उसे खो दिया।

तेरे पति तो चतुर हैं--भगवान् तो ज्ञानस्वरूप है--पर तू बड़ी अज्ञानी है। तूने कभी प्रीतम की शय्या नहीं सँवारी। कबीरदास जी कहते हैं, वही स्त्री (आत्मा) जागती है (अज्ञान अन्धकार से मुक्त होती है) जिसके हृदय में गुरु का उपदेश-रूपी शब्द बाण चुभ जाता है--असर कर लेता है ॥८५॥

विशेष—यहाँ कबीर जी का कहना है कि वही आत्मा अज्ञान से मुक्त हो कर भक्ति मार्ग में लग सकती है जिसके हृदय में सद्गुरु का उपदेश घर कर गया है।

८६. सुख-सिंधु की सैर का स्वाद—

शब्दार्थ--सिंधु—समुद्र। स्वाद--आनन्द। चौतरा--चबूतरा। चाह--तृष्णा। वृच्छ--वृक्ष। आरूढ़--सवार। निरवासना--निष्काम वृत्ति। तत्त—तत्त्व। रत्त--लीन।

भावार्थ--सुख रूपी समुद्र की सैर का आनन्द तभी मिल सकता है जब तृष्णारूपी चबूतरे को भूल जाया जाय, अर्थात् सुख का अनुभव तृष्णा के अन्त होने पर ही हो सकता है। एक छोटे से बीज से जैसे एक बड़े वृक्ष का विस्तार होता है अर्थात् जैसे बीज में वृक्ष सूक्ष्मरूप में रहकर समय पर विशालरूप धारण कर लेता है वैसे ही तमाम रोग तृष्णा में बीज रूप से रहते हैं और अनुकूल समय पाकर प्रकट हो जाते हैं। जब तृष्णा के चबूतरे में आग लग जाती है—जब तृष्णा का नाश हो जाता है तभी मन में दृढ़ वैराग्य होता है। कबीरदास जी कहते हैं, इस प्रकार निकाम्म वृत्ति वाले होकर तत्त्व में लीन होकर कार्य कीजिए ॥८६॥

विशेष—यहाँ कबीरदास जी उपदेश कर रहे हैं कि तृष्णा का अन्त होने पर ही मन में दृढ़ वैराग्य होता है। मनुष्य को तत्त्व का बोध होता

है और सच्चे आनन्द का अनुभव भी उसके विनाश पर ही हो सकता है। इसलिए तृष्णा हर तरह से त्याज्य है।

८७. काया बौरी, चलत प्रान--

शब्दार्थ--काया--शरीर। बौरी--बावली। छिआ--क्षीण। छार--राख, भस्म। चाँचर चवर कै पानी--पवित्र भूमि में इकट्ठा हुआ पानी, गंगाजल के समान पवित्र जल। मिहमानी--सम्मान, सत्कार, मेहमानदारी। सनकादि--ब्रह्मा के मानस पुत्र सनक, सनातन, सनतकुमार आदि। सेस--शेष नाग। सँघाती--साथी। वसुधा-पृथ्वी। लोई--कबीर की स्त्री का नाम।

भावार्थ--काया बौरी·········विरला कोई--

हे बावली काया! प्राणों के निकलने पर तू क्यों रोती है? जिस काया को पाकर बहुत सुख उठाया, नित्य उठकर उसे मल-मल कर धोया; वह समय पर क्षीण होकर राख की ढेरी हो जायगी फिर उसका कोई नाम भी न लेगा।

प्राण कहता है कि हे बावली काया! सुन; तेरा मेरा साथ नहीं हो सकता; तुझ सरीखी सहचरी मैंने कई छोड़ दी हैं, किसी को भी अपने साथ नहीं लिया।

संसार का यह नियम है कि जीवित ब्रह्म को तो कोई नहीं पूछता परन्तु मुर्दे की आवभगत में बहुत प्रयत्न किया जाता है। उसके लिए कुशा और तीर्थ जल जैसी सामग्री का आयोजन किया जाता है।

सनकादि, ब्रह्मादि तथा सहस्र मुख वाले शेषनागादि जितने देवता और नागों ने इस पृथ्वी पर जन्म लिया, उनमें से कोई भी स्थिर नहीं रहा।

हे लोई! जरा समझ देखो, पाप और पुण्य जन्म के साथी

हैं। कबीरदास जी कहते हैं कि इस सृष्टि के रहस्य को कोई बिरला ही समझ पाता है।

८८. या जग अंधा मैं केहि--

शब्दार्थ—पानी कै घोड़ा पवन असवरवा = पानी के घोड़े पर हवा सवार है। ढरकि परे = गिर पड़ता है। धन्धा = काज। अगम = अगम्य, न पहुँचने योग्य। धरवा = धार, नदी की धारा। खेवनहार = केवट, मल्लाह, नाविक। फन्दा—फाँस, चक्कर। बन्दा—मनुष्य।

भावार्थ=इस अंधे जगत् को मैं क्या समझाऊँ, यदि एक आध हो तो उसे समझाया जाय। यहाँ तो सब पेट के धन्धे (कामकाज) में भूले पड़े हैं। पानी के घोड़े पर पवन की सवारी ओस बिन्दु की तरह क्षणस्थायी है; उसी तरह मानव शरीर में प्राणों का निवास भी क्षणभंगुर है। किन्तु फिर भी लोग संसार में ऐसे लिप्त हैं कि उसे ही अमरता का रूप समझे बैठे हैं। संसाररूपी नदी बड़ी गहरी है जिसमें काम-क्रोध की धार बड़ी प्रबल है और मन रूपी केवट को माया का फंदा पड़ गया है। संसार अंधे की भाँति दिया जला के टटोल रहा है। किन्तु उसे वास्तविकता की प्राप्ति नहीं होती। तृष्णा की आग लगने से शरीर जल गया और गुरु के ज्ञान बिना मनुष्य भटक गया। कबीरदास जी कहते हैं कि हे भाई सन्तो! अन्ततः मनुष्य को यहाँ से एक दिन लँगोटी झाड़ कर चल देना पड़ेगा।

कबीरदास जी ने यहाँ शरीर की क्षणभंगुरता तथा मनुष्य की सांसारिकता का चित्रण किया है।

८९ करम गति टारे नाहिं टरी--

नोट—मूल पुस्तक में इस शब्द की चौथी पंक्ति में 'बारधि'

के स्थान पर 'पारधि' पाठ चाहिए और सातवीं पंक्ति में 'नृप' के स्थान पर 'नृग' पाठ चाहिए।

शब्दार्थ—करम गति—भाग्य का फेर। टारे नाहिं टरी = हटाए नहीं हटी। सोधि के—विचार कर। फन्द—षड्यंत्र। पारधि—शिकारी यहाँ श्रीराम से तात्पर्य है। मिरगचरी—वनचारी मृग। विधि संयोग—कर्म संयोग, भाग्य चक्र, राहू से ग्रसित होना।

भावार्थ—भाग्य चक्र को कोई नहीं टाल सकता। देखो, बड़े ज्ञानी मुनि वशिष्ठ जी ने विचार पूर्वक राम के राज्यतिलक का मुहूर्त रखा था। ऐसा होने पर भी कर्मगति से राम को वन में जाना और अनेकों विपत्तियों का सामना करना पड़ा। सीता का हरण हुआ। राजा दशरथ की मृत्यु हुई। कर्मगति से ही रावण ने मारीच से वह षड्यंत्र रचा तथा रामचन्द्र जी उस मायावी वनचर मृग के पीछे गये। रावण सीता को हर कर ले गया और सोने की लंका जल कर राख हो गई। भाग्य के फेर से ही राजा हरिश्चन्द्र शूद्र के हाथ बिके। राजा बलि स्वर्ग के बदले पाताल गये। करोड़ों गाय नित्य दान करने वाला राजा नृग गिरगिट की योनि को प्राप्त हुआ। महाबली अर्जुन, जिसके स्वयं श्रीकृष्ण सारथी थे, कर्मगति से विपत्ति का शिकार हुआ। इसी भाग्यचक्र से महा अभिमानी दुर्योधन तथा अभिमानी यदुवंशियों का सर्वनाश हुआ। इसी से राहु का सिर काटा गया, सूर्य और चन्द्रमा को क्रूर ग्रह (राहु) से ग्रसित होना पड़ा। कबीरदास जी कहते हैं कर्मगति का कहाँ तक वर्णन करें, जो होनहार होती है वह होकर रहती है। उसे कोई टाल नहीं सकता है।

राजा बलि और राजा नृग की कथा परिशिष्ट में देखिए।

९०. सन्तो राह दोऊ हम दीठा—

शब्दार्थ—दीठा = देखा। तुरक = मुसलमान। हटा नहीं माने = बरजे नहीं रहते, रोके नहीं रुकते। बरत = व्रत, उपवास। सेती = साथ, सहित। हटके = रोकता। पारन = पारण, व्रत तोड़ना। सगोती = सगोत्र, सजातीय। बांग पुकारै = बाँग लगाता है। भिस्त = बहिश्त, स्वर्ग।

भावार्थ—हे सन्तो, हमने हिन्दू-मुसलमान दोनों के धर्म-मार्ग को देखा है। हिन्दू मुसलमान दोनों रोके नहीं रुकते। दोनों ही जिह्वा के स्वाद पर मर रहे हैं। देखो, हिन्दू एकादशी का व्रत करते हैं, अन्न का त्याग कर देते हैं,पर जिह्वा को उस दिन भी नहीं रोक सकते। सजातीय बन्धुओं के साथ व्रत का पारण करते हैं और खूब ठूँस ठूँस कर दूध-सिंघाड़ा खाते हैं। अब, मुसलमानों को भी देखिए, वे रोजे रखते हैं, नमाज पढ़ते हैं, 'अल्लाहो अकबर' की बाँग भी लगाते हैं। परन्तु उनको स्वर्ग कैसे मिल सकता है, वे तो शाम को मुर्गी को हलाल कर देते हैं।

विशेष—यहाँ कबीरदास जी ने हिन्दू मुसलमान दोनों की धार्मिक कुरीतियों का वर्णन किया है और खूब किया है। जिस दिन हिन्दू एकादशी का व्रत करते हैं उस दिन और दिनों की अपेक्षा ज्यादा खाते हैं। मुसलमान रोजा रखते हैं, नमाज पढ़ते हैं, बाँग भी लगाते हैं परन्तु सन्ध्या पड़ते ही सब पर पानी फेर देते हैं। बेचारी मुर्गी का गला काट डालते हैं। सचमुच दोनों ही गलत रास्ते पर हैं। उन्हीं को कबीर उद्‌बोधन देते हैं।

९१. हिंदू दया मेहर को तुरकन—

शब्दार्थ—मेहर—रहम, दया। घट—हृदय। हलाल—छुरे से गला काटना। झटका—तलवार से एक ही वार में काट डालना।

भावार्थ—हिन्दुओं ने अपने हृदय से दया और मुसलमानों ने

अपने दिल से रहम का त्याग कर दिया है। मुसलमान हलाल करते हैं तो हिन्दू झटका करते हैं। दोनों ही के घर में आग लगी है --दोनों ही गलत रास्ते पर हैं। वास्तव में सतगुरु का उपदेश तो यही है कि हिन्दू और मुसलमानों का रास्ता भिन्न भिन्न नहीं हो सकता। यथार्थ में दोनों का एक ही मार्ग है। उन्हें तो यही समझना चाहिए कि राम और खुदा एक ही है--खुदा न कहा राम ही कह लिया या राम न कहा खुदा ही कह लिया।

६२ रहना नहिं देस बिराना है--

शब्दार्थ—बिराना—पराया, दूसरे का। काँट की बाड़ी—काँटों की बाड़ जो खेत की रक्षा के लिये लगाई जाती है। झाड़ औ झाँखर = घास फूस। ठिकाना—स्थान, टिकने की जगह।

भावार्थ—हे सन्तो! इस संसार में सदा नहीं रहना है, यह तो पराया देश है। यह संसार कागज़ की पुड़िया के सदृश है जो बूँद पड़ते ही घुल जायगा—नष्ट हो जायगा। यह संसार काँटों की बाड़ के समान है, जिसमें उलझ कर—विषय-वासना रूपी काँटों में फँस कर मर जाना है। यह संसार घासफूस के समान है जो आग लगने से—जरा-सी चिनगारी के पड़ने से—जल उठेगा। कबीरदास जी कहते हैं कि इस संसार में केवल सतगुरु का नाम ही असली स्थान—मुख्य ठिकाना है।—(उसी की प्राप्ति के लिए जीव को प्रयत्नशील होना चाहिए। इसके अतिरिक्त जिसके लिए भी प्रयास किया जायगा वह नश्वर और भ्रमपूर्ण होगा)।

नानक

१. हिरदे जिनके हरि बसे—

शब्दार्थ—हिरदे—हृदय। सूर—शूरवीर। कहि न जाय—वर्णन नहीं किया जा सकता। पूरि रह्या भरपूर—सब जगह परिपूर्ण हो रहा है।

भावार्थ—जिनके हृदय में परमात्मा का वास है वे भक्त जन ही सच्चे शूरवीर हैं। नानक साहेब कहते हैं कि ईश्वर सब जगह समाया हुआ है, उसका तो वर्णन करना भी कठिन है ॥१॥

२. मन की दुविधा ना मिटै—

शब्दार्थ—कउड़ी—कौड़ी।

भावार्थ—जब तक मन की दुविधा (द्वैत भाव) नहीं मिटती तब तक मुक्ति कैसे हो सकती है? नानक साहेब कहते हैं कि कितने खेद का विषय है कि मनुष्य अमूल्य नर देह को कौड़ी के लिए खो देते हैं ॥२॥

३. जिन बेले अमृत बसे—

नोट—इस दोहे के शुरू में 'जिन बोले' के स्थान पर 'जिन बेले' और 'चिह पहरे' के बदले 'चौ पहरे' पाठ चाहिए।

शब्दार्थ—बेले—समय। जीयाँ—मनुष्य। दाति—देन।

भावार्थ—नानक जी कहते हैं ब्राह्ममुहूर्त में, जो अमृत बेला है और जब मनुष्य को परमात्मा की देन मिलती है, हे मनुष्य, उस समय पिछली रात या रात के चौथे पहर में तू उठ बैठ।

४. सब कछु जीवत को ब्योहार—

शब्दार्थ—ब्योहार—व्यवहार। बाँधव—रिश्तेदार। न्यारे—जुदा। टेरत—पुकारते हैं। मृगतृस्ना—मृगतृष्णा।

भावार्थ—माता, पिता, भाई, पुत्र, रिश्तेदार और स्त्री ये सब जीवित के ही संबंध हैं। ज्योंही प्राण शरीर से निकले कि सब भूत-प्रेत कह कर पुकारने लगते हैं। फिर तो आधी घड़ी भी कोई घर पर नहीं रखता, तुरन्त निकाल देते हैं। जरा हृदय में विचार कर देखो तो संसार की रचना तुम्हें कोरी मृगतृष्णा प्रतीत होगी। इसलिए नानक साहेब कहते हैं कि हे नर! नित्य राम नाम का भजन कर। इसी से तेरा उद्धार होगा ॥४॥

विशेष—यहाँ नानक साहेब ने संसार के सब सम्बन्धों को झूठा सिद्ध करके राम भजन को ही संसार-रूपी समुद्र से पार होने का एकमात्र उपाय बतलाया है।

५. मन की मनहीं माहि रही—

शब्दार्थ—दारा—स्त्री। मीत—मित्र। पूत—पुत्र। सकल—सब। बिरियाँ—समय। मही—पृथ्वी।

भावार्थ—अहो कितने दुःख का विषय है, हमने न भगवान् का भजन ही किया, न तीर्थ का सेवन ही। इस बीच ही काल ने चोटी पकड़ ली। मन की सब इच्छाएँ मन में ही रह गईं। स्त्री, मित्र, पुत्र, रथ सम्पत्ति और धन जन से परिपूर्ण मही, ये सब झूठे हैं, सिर्फ राम का नाम ही एकमात्र सच्चा है। अनेकों योनियों में भटकने के बाद यह मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ है। नानक साहेब कहते हैं अब मानव शरीर मिलने पर भगवान् का स्मरण क्यों नहीं करता है?

६. जो नर दुख में दुख नहिं माने—

शब्दार्थ—कंचन—सोना। सनेह—स्नेह। माटी—मिट्टी। नियारो—अलग, पृथक्। मनसा—कल्पना, इच्छा। निरासा—उदासीन। घट—हृदय। किरपा—कृपा। जुगति—युक्ति। पिछानी—पहचानी।

भावार्थ—जो मनुष्य दुःख में दुखी नहीं होता, जिसके न सुख है, न स्नेह और न भय है और जो मिट्टी और सोने को समान समझता है, जिसके लिए निन्दा और स्तुति समान है, जिस के लिए मान अपमान कुछ भी नहीं है, जो लोभ, मोह, अहंकार, हर्ष और शोक से पृथक् रहता है, जो तमाम आशा और कल्पनाओं का त्याग करके संसार से उदासीन रहता है, काम क्रोध जिसको स्पर्श नहीं कर सकते, उसी के हृदय में परमात्मा का निवास होता है। इस युक्ति को वही पहचान सकता है, जिस पर गुरु ने दया की हो। नानक तो ब्रह्म में इस प्रकार लीन हो गए जैसे पानी पानी में लीन हो जाता है।

७. रे मन कौन गत होई है तेरी—

शब्दार्थ—गत = दशा। लुभान = आसक्त। निमिष = पल। दारा = स्त्री। पसार = विस्तार। मुरार = मुरारि, श्रीकृष्ण।

भावार्थ—अरे मन! तेरी अन्त में क्या गति होगी? संसार में मनुष्य शरीर धारण करके तू ने राम नाम कभी कान से भी नहीं सुना। विषय वासनाओं में तू लगा रहा, उधर से तूने अपनी मति नहीं हटाई। मानव शरीर धारण कर तूने एक पल भी प्रभु का स्मरण नहीं किया। स्त्री पुत्रादि होने से तू अति दीन हीन होगया और तेरे पैरों में बेड़ियाँ पड़ गईं—अर्थात् स्त्री-पुत्रादि के झगड़ों में पड़ने से तू अधिक बन्धन में पड़ गया—इनके होने से परमात्मा का ध्यान तो फिर होने से रहा। नानक साहेब कहते हैं कि हे नर! मैं

तुझ से पुकार कर कहता हूँ यह जग का विस्तार स्वप्न की भाँति सब मिथ्या है। अतएव मुरारि--श्रीकृष्ण--का भजन क्यों नहीं करता जिसकी माया दासी है।

८. सुमरन कर ले मेरे मना---

शब्दार्थ-- कूप---कुआँ। छीर--क्षीर, दूध।

भावार्थ---हे मेरे मन! भगवान् का भजन कर ले। परमात्मा के नाम बिना तेरी अवस्था व्यर्थ ही बीत रही है। जल के बिना जैसे कुआँ, दूध के बिना जैसे गाय, दीपक बिना जैसे घर, फल बिना जैसे वृक्ष, नेत्र बिना जैसे देह, चन्द्रमा बिना जैसे रात्रि, वर्षा बिना जैसे धरती और वेद बिना जैसे पंडित व्यर्थ और शोभा रहित हैं, वैसे ही प्राणी भी भगवान् के नाम बिना व्यर्थ और शोभा रहित हैं। इसलिए हे संतजन! काम, क्रोध, मद, मोह आदि को अनिष्ट-कारी जान कर त्याग दे। नानक साहेब कहते हैं कि हे भाग्यवान, सुन; इस संसार में कोई अपना नहीं है।

९. बिसर गई सब तात पराई---

शब्दार्थ---बिसर गई---भूल गई। तात---प्यारे। बेगाना---पराया। बिगसाई---बिकसित हुए, हर्षित हुए।

नोट---मूल पुस्तक में अंतिम पंक्ति में 'बिनसाई' के स्थान पर 'बिगसाई' पाठ चाहिए।

भावार्थ---हे तात! जब से साधु-संगति प्राप्त हुई तब से हमने अपने और पराये का भेद-भाव सब भुला दिया है। अब हमारा न कोई वैरी है न हमारे लिए अब कोई पराया है। सब के साथ हमारा मैत्री-भाव है परमात्मा जो कुछ करता है सब ठीक करता है, यह सुमति भी हमें साधुओं से ही मिली है। सब में एक

परमात्मा ही समान रूप से रम रहा है, यह देख देख कर मैं हर्षित हो जाता हूँ।

१०. साधो मन का मान त्यागो—

शब्दार्थ—अहनिस—दिन रात। अतीता—परे, दूर।

भावार्थ—हे सन्तो! मन के अभिमान को छोड़ दो। काम, क्रोध और दुर्जन की संगति से रात दिन दूर रहो। जो सुख-दुख और मान-अपमान को समान समझता है, हर्ष-शोक से दूर रहता है, और स्तुति और निन्दा दोनों का त्याग कर निर्वाण पद की खोज करता है, वही संसार के तत्त्व को पहचान सकता है। नानक साहेब कहते हैं कि यह समता भाव कठिन खेल है, कोई विरला गुरुमुख ही इसे जान सकता है।

११. काहे रे बन खोजन जाई—

शब्दार्थ—सर्व निवासी—सर्व व्यापी। अलेप—निर्लेप। चीन्हे—पहचाने।

भावार्थ—अरे! परमात्मा को वन में ढूँढने क्या जाते हो वह तो सर्वव्यापी है—सब जगह रहता है, सदा निर्लेप है और हमेशा तेरे ही साथ रहता है। जिस प्रकार पुष्प में सुगन्धि और दर्पण में प्रतिबिम्ब रहता है, उसी प्रकार भगवान् तेरे हृदय में निवास करते हैं; इसलिए उन्हें अपने हृदय में ही ढूँढ। गुरु ने यही बताया कि परमात्मा को बाहर भीतर सर्वत्र समझो। नानक साहेब कहते हैं कि बिना अपने को पहचाने भ्रम की काई दूर नहीं हो सकती। अतएव पहले अपने को पहचानो कि तुम क्या हो।

१२. गुन गोबिंद गायो नहीं—

शब्दार्थ—अकारथ—व्यर्थ। मीन—मछली। निमिष—पल। फाँस—पाश, डोरी।

भावार्थ--भगवान् के गुण गाये बिना मनुष्य जन्म निरर्थक बना डाला। नानक साहेब कहते हैं कि जिस प्रकार मछली जल को भजती है--उसका ही ध्यान करती है, उसके तनिक वियोग से मर जाती है, उसके बिना ज़रा भी नहीं रह सकती—उसी प्रकार हे मन! तू प्रभु को भज—उसका नाम स्मरण कर। अरे मन! विषयों में क्यों लिप्त हुआ है, पल भर के लिए भी उनसे उदासीन नहीं होता। नानक साहेब कहते हैं कि भगवान् के नाम को भज, जिससे अन्त में यम की पाश में न पड़ना पड़े।

सूरदास

१. चरण कमल बंदौं हरि राई—

शब्दार्थ—पंगु—लूला। गिरि—पर्वत। लंघै—लाँघ जाता है, पार हो जाता है। दरशाई—दिखाई देता है। मूक—गूँगा। रंक—गरीब, निर्धन। छत्र—मुकुट।

भावार्थ—सूरदास जी कहते हैं कि मैं भगवान् श्रीकृष्ण के उन कमल रूपी चरणों की वन्दना करता हूँ जिनकी कृपामात्र से लूला आदमी पर्वत को पार कर जाता है और अन्धे को (अन्तर्जगत् और बाह्य जगत्) सब कुछ दिखाई देने लगता है। भगवान् के उन चरण-कमलों की कृपा से बहरा सुनने लगता है, गूँगा बोलने लगता है और निर्धन राजमुकुट धारण कर चलता है। सूरदास जी कहते हैं कि ऐसे दयामय भगवान् के चरणों को मैं बार बार प्रणाम करता हूँ ॥१॥

२. अविगत गति कछु कहत न आवे—

शब्दार्थ—अविगत = ईश्वर, जो जाना न जा सके। कछु कहत न

आवे=वर्णन नहीं किया जा सकता है। अंतर्गत ही=मन में ही। तोष=आनन्द, सन्तोष। (मूल पाठ में दोष के स्थान में तोष होना चाहिए।) अगोचर=इन्द्रिय ज्ञान से परे। निरालम्ब=अवलम्ब—रहित, आधार रहित। चकृत=चकित। अगम=अगम्य, कठिन। सगुण=साकार। लीला=क्रीड़ा।

भावार्थ—निराकार ब्रह्म की बात कुछ कहने में नहीं आती अर्थात् निराकार ब्रह्म की उपासना का आनन्द अन्तरात्मा का विषय है वह वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार गूँगा मीठे फल के स्वाद को मन में ही अनुभव करता है उसे बाहर व्यक्त नहीं कर सकता, ठीक उसी प्रकार ब्रह्म भी है, जो सतत समभाव से परमानन्द प्रदान करता है। परन्तु वह मन वाणी और इन्द्रियों से अगम्य है—गूँगे का गुड़ है। इसे तो वही जान सकता है जो इसे प्राप्त करता है।

निराकार ब्रह्म रूप, रेखा, गुण, जाति और युक्ति से पृथक् है—अर्थात् उसके न रूप है, न रेखा है, न गुण है, न जाति है जिससे उसका भान हो सके और न वह युक्तियों द्वारा ही जाना जा सकता है। इसलिए उसके लिए भटकता हुआ मन बिना किसी अवलंब के विस्मित एवं चकित हो रहा है। एतदर्थ उस निराकार ब्रह्म को अगम्य—न पाने योग्य—विचार कर, सूरदास सगुण ब्रह्म श्रीकृष्ण की लीला के पद गाना उचित और उपयुक्त समझते हैं ॥२॥

विशेष—इस पद में सूरदास जी ने निराकार ब्रह्म की उपासना को अगम्य बताकर साकार ब्रह्म की उपासना को उचित और गम्य ठहराया है।

३, वासुदेव की बड़ी बड़ाई--

शब्दार्थ—ढिठाई—धृष्टता। बकी—बकासुर की बहन, पूतना। वासुदेव—श्रीकृष्ण और विष्णु भगवान्। सूरदास जी के मत से कृष्ण ही विष्णु के अवतार हैं। विरंचि—ब्रह्मा।

भावार्थ—श्री विष्णु या (श्रीकृष्ण) की कीर्ति महान है। वे जगत् के माता-पिता, स्वामी और गुरु हैं। वे अपने भक्त की धृष्टता को सहन कर लेते हैं। देखिए, जब भृगु ने उनकी छाती पर लात मारी तो उनके चरणों को छाती पर रख कर वे बड़े मीठे वचन बोले, जहाँ इसके विपरीत ब्रह्मा और शिव भृगु के इस काम पर उन्हें मारने दौड़े थे। भगवान् की गति को कोई देवता भी न पा सका। वे बिना बदला चाहे उपकार करते हैं और बिना स्वार्थ की मित्रता करते हैं। देखिए, रामावतार में भगवान् विष्णु अपने दुश्मन के भाई विभीषण को अपने प्रिय भाई भरत की तरह मिले। कृष्णावतार पूतना कपट करके उन्हें मारने आई परन्तु भगवान् ने दया करके उसे देव-दुर्लभ बैकुंठ धाम प्रदान कर दिया। सूरदास जी कहते हैं कि यदुवंशियों के स्वामी श्रीकृष्ण बिना लिये ही दान देने वाले हैं। अर्थात् वे प्रत्युपकार चाहे बिना ही उपकार करने वाले हैं ॥३॥

सूचना—भृगु और बकी की कथा परिशिष्ट में देखिये।

४. करनी करना सिंधु की—

शब्दार्थ—करना सिंधु—करुणा के समुद्र। परसे बकी—बकी (पूतना) ने स्पर्श किया था। जननि गति पावै—माता यशोदा के समान मोक्ष पा गई। (मूल पुस्तक में "गति गावै" छपा है, वह अशुद्ध है 'गति पावै' चाहिए।) निर्गुण = निराकार। सगुण—साकार। दाँवरी—रस्सी। बिलखावे—रोदन करता है, विलाप करता है। शिर नावै—सिर झुकाता

है। जरासन्ध की बंदी काटी नृप—राजाओं को जरासन्ध के बन्धन से मुक्त किया। बरुण-फांस से व्रजपतिहिं—वरुण के पाश से नंद जी को। गयंद—हाथी। नामा—एक भक्त था जिसके घर जाकर भगवान् ने उसका छप्पर छा दिया था। छानि—छानि—छप्पर।

भावार्थ—करुणा के सागर भगवान् कृष्ण की करनी कहने में नहीं आती—वर्णन नहीं की जा सकती हैं। पूतना ने कपट करने को छुआ था (उन्हें गोद में लिया था) तो उसे माता यशोदा की तरह मोक्ष दे दिया। वेद, उपनिषद् जिसका यश गाते हैं और जिसे निराकार बताते हैं उसी भगवान् ने साकार होकर अपने को नन्द की डोरी से बँधवाया। वह दयालु कृष्ण उग्रसेन की विपत्ति देख कर स्वयं रोये और कंस को मार कर उग्रसेन को राजा बनाकर स्वयं उनके सामने सिर झुकाया अर्थात् उनके अधीन होकर मंत्री का कार्य किया। राजाओं को जरासन्ध के बन्धन से मुक्त कर राज-वंश के कीर्ति-भाजन बने। पांडवों को शोक सागर से उद्धार कर घर में बसाया अर्थात् उन्हें दुर्योधन के अत्याचारों से बचाया। भगवान् कृष्ण अपने भक्तों की सहायता के लिए उसी प्रकार दौड़ पड़ते हैं जिस प्रकार गाय अपने बछड़े की याद आते ही उसके लिए दौड़ पड़ती है। वरुणपाश में पड़े हुए नन्द बाबा को उन्होंने क्षण भर में छुड़ा लिया। मगर के मुख में पड़े हुए हाथी को दुःखी जानकर स्वयं जाकर उसे दुख से मुक्त किया। कलियुग में भी नामा जैसे भक्त के घर जाकर उसका छप्पर छा दिया। सूरदास जी कहते हैं कि ऐसे भक्त-वत्सल भगवान् को कोई मेरी प्रार्थना भी जाकर सुना दे ॥४॥

सूचना—बकी, उग्रसेन, जरासन्ध, गयंद, नामा, और नन्द का वरण-पाश में पड़ना, इत्यादि कथाओं को परिशिष्ट में पढ़िये।

५. ऐसी कौन करी है—

शब्दार्थ—उदय अरु अस्त लौं—पूर्व से लेकर पश्चिम तक। ग्रस्यो—ग्रसित। जन—भक्त। पवन के गवन से अधिक—हवा से भी तेज़। घरनी—गृहिणी, पत्नी। द्विज—ब्राह्मण, यहाँ सुदामा जी से तात्पर्य है। शक्र—इन्द्र। गह्यो गिरिपान—गोवर्द्धन पर्वत को हाथ पर लिया। भवत्रास ते—सांसारिक दुःख के भय से। कुटिल—टेढ़ा, दुष्ट।

भावार्थ—जैसा भक्तों की लज्जा का विचार भगवान् अपने हृदय में रखते हैं ऐसा दूसरा कौन करने वाला है? हिरण्यकशिपु जिसका राज्य पूर्व से लेकर पश्चिम तक फैला हुआ था, उसके द्वारा जब प्रह्लाद दुःख से ग्रसित हुआ और उसने (प्रह्लाद ने) मन में भगवान् के चरणों का ध्यान किया, तथा विपत्ति पड़ने से सब प्रकार अधीर हो गया उस समय भगवान् ने खंभे से प्रकट हो कर अपने भक्त को विपत्ति से मुक्त कर दिया। हाथी को पकड़ कर मगर जब समुद्रतल की ओर घसीटने लगा उस समय गज को काल के भय से भगवान् का नाम स्मरण हो आया। बस, अब क्या था, भगवान् अपने बैकुण्ठधाम और सुखशय्या को त्याग कर, अपने वाहन गरुड़ को भी छोड़कर, पवन से भी तेज़ गति से उसकी सहायता को चल पड़े। क्रोधित होकर जब दुःशासन ने भरी सभा में द्रौपदी के केश पकड़ उसका चीर हरण करना चाहा, उस समय द्रौपदी ने जरा सा भगवान का यश गाया। इसी पर भगवान ने उसके चीर को इतना बढ़ाया कि दुःशासन खींचते खींचते हार गया पर चीर का कहीं अन्त नहीं मिला। उसकी लज्जा का साज चीर जैसा था वैसा बना रहा। सुदामा जी की स्त्री ने जब बड़े ज़ोरदार शब्दों में अपने पति की उक्ति का

प्रतिवाद किया और उसे द्वारका जाने के लिए मजबूर कर दिया, तो बेचारा ब्राह्मण द्वारका में जा खड़ा हुआ। द्वारका पहुँचने पर श्रीकृष्ण भगवान् उससे हाथ जोड़ कर बड़े प्रेम से मिले और भेंट के लिए लाए हुए तंडुल (चावल) लेकर उसे इन्द्र से भी अधिक ऐश्वर्यशाली बना दिया। ब्रज के गोप और गोपियों ने जब इन्द्र की पूजा न कर उसका मान भंग किया और इन्द्र ने कुपित हो भयंकर जल वृष्टि की उस समय श्रीकृष्ण ने ब्रजवासियों की रक्षा के लिये गोवर्द्धन पर्वत को अपने हाथ में लेकर उन्हें इन्द्र के कोप से बचाया। इससे उनका यश संपूर्ण जगत् में फैल गया। हे प्रभो ! आपको इस प्रकार भक्तवत्सल जानकर और भव-त्रास से पीड़ित हो कर यह अन्धा, कामी और कुटिल सूरदास आपकी शरण आया है।

सूचना—प्रह्लाद, गज, द्रौपदी-चीरहरण, सुदामा और गोवर्द्धन-धारण की कथाएँ परिशिष्ट में पढ़िये।

६. का न कियो जनहित जदुराई—

मूल पुस्तक में पृष्ठ ७२ के बाद इस पद के निम्नलिखित चरण छूट गये हैं—

भक्त वछल बपु धरि नर केहरि दनुज दहन उर डर सुरसाईं।
बलि बल देखि अदिति सुत कारण मियदुपलव तिहुँपुर फिरि आई।
एहि थर बनि क्रीडा गजमोचन और अनन्त कथा श्रुति गाई।
सूर दीन प्रभु प्रगट बिरद सुनि अजहुँ दयाल पतित शिर नाई।

शब्दार्थ—जनहित—भक्त की भलाई के लिए। जदुराई—यदुपति, श्रीकृष्ण। भक्तवछल—भक्तवत्सल। बपु—शरीर। नरकेहरि—नृसिंह। दनुज—राक्षस। दहन—जलाने को, नष्ट करने को। उर—हृदय। सुरसाईं—(सुरस्वामी), इन्द्र। श्रुति—वेद। विरद—बाना,

यश। पतित—नीच। अदिति सुत—देवता। थर—स्थान, पृथ्वी। व्रीड़ा—लज्जा।

भावार्थ—भगवान् श्रीकृष्ण ने भक्तों के लिए क्या नहीं किया! दयालु भगवान् ने पहले दिए हुए वचनों के कारण ही नन्द और यशोदा की गाएँ चराईं। भक्तवत्सल भगवान् ने नृसिंह रूप धारण कर हिरण्यकशिपु को मार कर देवराज इन्द्र का भय दूर किया। राजा बलि के दान बल को देखकर देवता घवड़ाए कि कहीं बलि उनका स्वामी न हो जाय, इसलिए भगवान् ने वामन का रूप धारण करके तीनों लोकों को दो पग से नाप कर बलि को पाताल भेज दिया। आपने इसी पृथ्वी पर हाथी को ग्राह के चंगुल से छुड़ाकर उसे लज्जित होने से बचा लिया। इसी प्रकार आपकी वत्सलता की अनन्त कथाएँ वेदों में वर्णित हैं। सूरदास जी कहते हैं कि हे पतित! ऐसे प्रभु के यश को प्रकट जान कर अब भी तो सिर झुका, अब तो शरण में आ ॥६॥

(कथाएँ परिशिष्ट में देखिए)

७. जहां जहां सुमिरे हरि जेहि विधि—

शब्दार्थ—जमल तरु—यमलार्जुन वृक्ष, जो मुनि के शाप से वृक्ष हो गए थे। पुराये हो—पूर्ण किए हो। ग्राह—मगर। पावन—पवित्र। कुचैल—मैले। याँचे—माँगे।

भावार्थ—हे प्रभो! वेद पुराण यही गाते हैं कि तुम दीनबन्धु हो, भक्तों पर दया करने वाले हो, दया के भंडार हो। और जहाँ जहाँ जिसने आपको जिस तरह स्मरण किया है वहाँ वहाँ तुम वैसे ही उसकी सहायता के लिए दौड़ पड़े हो। कुबेर के बेटे यमलार्जुन जब विषय रस की मदिरा से उन्मत्त होगये थे, अपने आपे

में न रहे थे, और मुनि के शाप से वृक्ष बन गए थे तब तुमने उनके उद्धार के लिए ही अपने आपको बँधाया था।

बड़े मैले-कुचेले दीन ब्राह्मण सुदामा के चावल चबाकर, और उसे खूब धन संपत्ति देकर, उसकी पत्नी की इच्छा को तुमने पूर्ण किया। और जब हाथी को मगर जल के भीतर ले गया और उस हाथी ने जब तुम्हारा नामोच्चारण किया, तो उसी समय, हे प्रभो! तुमने गरुड़ को छोड़कर, शीघ्र जाकर, उसको ग्राह के फन्दे से मुक्त किया। तुम स्वयं ही जगत् गुरु थे, गुरु से भला तुमको क्या पढ़ना था! पर फिर भी गुरु के उपकार को मान कर उसके माँगने पर उसके मृत पुत्र को यमलोक से लाकर दिया। हे प्रभो! तुमने मुझ समान अनेकों पापियों को मोक्ष प्रदान किया है। सूरदास जी कहते हैं कि तुम भक्तवत्सल हो, पावन नाम कहे जाते हो, अर्थात् तुम्हारा नाम मनुष्यों को पवित्र करने वाला है ॥७॥

८. प्रभु को देखो एक सुभाई—

शब्दार्थ—सुभाई—स्वभाव। उदधि—समुद्र। सरि—समान, बराबर (मूल पुस्तक में तीसरी पंक्ति के शुरू में 'गुण' के स्थान पर 'सरि' चाहिए)। जान शिरोमणि—ज्ञान शिरोमणि, ज्ञानियों में श्रेष्ठ। तिनका सो—तिनके के समान। अपने जन—अपने भक्त। मेरु—सुमेरु पर्वत। बदन—मुख। हों—मैं। हौं—हूँ। देहि सु पीठ—जो पीठ देते हैं, भुला देते हैं। अभागे—बदकिस्मत।

भावार्थ—ज्ञान शिरोमणियों में श्रेष्ठ भगवान् का हमेशा समुद्र के समान गंभीर और उदार स्वभाव दिखाई देता है, वे इस बात में सदा एक रस रहते हैं, कभी उनके स्वभाव में परिवर्तन नहीं होता।

वे तिनके के समान अपने भक्त के गुण को सुमेरु पर्वत के समान मानते हैं। इसके विपरीत समुद्र के समान अपराधों को बूँद के समान कहने में भी सकुचाते हैं। भगवान् का कमल के समान प्रसन्न मुख जैसे मैं अपने सम्मुख देख रहा हूँ। लेकिन उनके अन्तर्धान हो जाने पर भी उनकी उदार मुद्रा क्षण क्षण पर वैसी ही दिखाई पड़ती है। जब जब मैं देखता हूँ तो उनमें वही भाव पाता हूँ। (उनकी भक्तवत्सलता की एकरसता सदा-सर्वदा बनी रहती है) भक्त के विरह में कातर-दुःखी-करुणामय भगवान् उसके पीछे पीछे ही घूमते हैं। सूरदास जी कहते हैं कि जो ऐसे प्रभु को भूल जाते हैं वे बड़े अभागे, बदकिस्मत हैं ॥८॥

९. हरि सो ठाकुर और न जनको—

शब्दार्थ—ठाकुर—स्वामी, प्रभु। जन को—भक्त के लिए। विधि—तरह, भाँति। उदर—पेट। तृषा—प्यास। तोय—जल। पट—वस्त्र। तन—शरीर। सुरभी—गाय। कोटि—करोड़ों। निधन—निर्धन, दीन। परितिज्ञा—प्रतिज्ञा। पसारत—फैलाता है। तुरंत—शीघ्र। महा-कृतघन—महाकृतघ्न। को—कौन। चिंतामणि—ऐसी मणि जो सब अभिलाषाओं को—मन में जो जो चिंताएँ उठें उन सबको—पूर्ण कर देता है।

भावार्थ—भगवान् से बढ़कर और भक्त का कोई दूसरा रक्षक नहीं है। जिस प्रकार भक्त सुखी रहे उसी प्रकार भगवान् उस को रखते हैं। प्रभु, भूखे के पेट को भोजन, प्यासे को जल और नंगे को शरीर के लिए वस्त्र प्रदान करते हैं। जिस प्रकार गाय अपने बछड़े के साथ घर, वन, सब स्थानों में उसके पीछे घूमती रहती है, वैसे ही भगवान् भी अपने भक्त के साथ देश, विदेश हर स्थान में उसके साथ रहते हैं; उसकी रक्षा करते हैं। प्रभु बड़े उदार, चतुर तथा गरीबों के लिए करोड़ों कुबेर और चिन्तामणि

के समान हैं। वे अपने भक्त की प्रतिज्ञा रखते हैं तथा भक्त पर संकट पड़ते ही उसकी सहायता के लिए दौड़ पड़ते हैं। भगवान् बड़े प्राण-वीर हैं, उन्होंने भक्त की सहायता करने "परित्राणाय साधूनां" का जो प्रण किया है उससे कभी च्युत नहीं होते। इस प्रकार भगवान् करोड़ों उपकार करते हैं परन्तु सूरदास ऐसा कृतघ्न है कि उनमें से एक को भी नहीं मानता ॥९॥

१० हरि सो मीत न देखौं को—

शब्दार्थ--मीत--मित्र। अन्तकाल--विपत्तिकाल, मृत्युकाल। प्रतच्छौ होई--प्रत्यक्ष भी हो जाते हैं, दर्शन देते हैं। ग्राह--मगर। निवार्यौ--निवारण किया, दूर किया।

भावार्थ--भगवान् के समान मैंने कोई मित्र नहीं देखा। विपत्तिकाल में जो कोई उन्हें स्मरण करता है तो वे तुरन्त उसकी सहायता करते हैं और समय आने पर प्रत्यक्ष भी हो जाते हैं। जब मगर ने हाथी को पकड़ा और वह घबरा गया तो भगवान् उसी समय वैकुंठ लोक में लक्ष्मी और गरुड़ को छोड़कर भक्त की सहायता के लिए चल पड़े, और सुदर्शन चक्र से ग्राह को मार कर हाथी को विपत्ति से छुड़ाया। दुर्वासा के शाप को दूर करके राजा अंबरीष की लज्जा रखी। दुर्वासा भगवान् के सुदर्शन चक्र के भय से ब्रह्मलोक तक घूमते फिरे पर कोई देवता या ऋषि उनकी सहायता न कर सका। लाक्षा-गृह में जलते हुए पांडु-पुत्रों को बुद्धि बल से नाथ ने बचा लिया। सूरदास जी कहते हैं प्रभु अपने भक्त के नाना प्रकार भय दूर करते हैं, उसे अनेकों आपत्तियों से बचाते हैं ॥१०॥

सूचना—कथाएँ परिशिष्ट में देखिए।

११. भक्तवत्सल निज बानो—

शब्दार्थ—गोत—गोत्र। रंक—दीन, गरीब। हौं—मैं। द्वेता—द्वैतभाव। दानो—दानव। अरगानो—पृथक् किया। साखो—साक्षी। थानो—निवासस्थान।

भावार्थ—हे भगवान्! आपका भक्तवत्सल बाना है। आप किसी का गोत्र, कुल और नाम कुछ भी नहीं गिनते। चाहे कोई राजा हो या रंक इसकी भी कुछ परवाह नहीं करते। ब्रह्मा, शिव आदि की क्या जाति है, मैं अनजान कुछ भी नहीं जानता हूँ। जहाँ महत्ता (बड़प्पन) अहंभाव है वहाँ प्रभु नहीं रहते और जहाँ अहंभाव का अभाव है वहाँ द्वैतभाव कैसे रह सकता है? यद्यपि प्रह्लाद दानव कुल का था परन्तु फिर भी भक्तिभाव के कारण आपने खंभे से प्रकट होकर उसे दर्शन दिए। ऐसे रघुकुल के राघव, भगवान ने कृष्ण बनकर गोकुल को अपना निवास स्थान बनाया। भजन की महिमा बार-बार बखान करने पर भी नहीं कही जा सकती है। देखिए न, भगवान कैसे भक्तवत्सल हैं, जिन्होंने ध्रुव को राजपूत तथा विदुर को दासी पुत्र होने पर भी अपने से कभी पृथक् नहीं किया। युग युग से भगवान् का यही विरद चला आता है कि प्रभु अपने भक्तों के हाथ बिक जाते हैं—उनके वश में हो जाते हैं। भक्ति के कारण ही तो भगवान ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में हाथ में जल लेकर, पैर धोने का कार्य किया था। हे श्याम! आपके गुणों का कैसे वर्णन करूँ, क्योंकि आपके गुण अनन्त हैं और मेरी केवल एक जिह्वा है। इसलिए एक जिह्वा आपके अनन्त गुणों के वर्णन करने में कैसे समर्थ हो सकती है? सूरदास कहते हैं कि प्रभु की महिमा के तो केवल वेद-पुराण साक्षी हैं॥११॥

सूचना—सूरदास जी, श्रीराम, कृष्ण और विष्णु को एक मानते हैं। इसी से वे कृष्ण के लिए राम, रमापति आदि का खुला प्रयोग करते हैं।

१२. काहू के कुल तन न विचारत—

शब्दार्थ—कुल—वंश। अविगत—ईश्वर, जिसकी गति जानी न जा सके। ब्योहारत—व्यवहार करते हैं। (मूल पुस्तक में 'पग धारत' के स्थान में 'ब्योहारत' होना चाहिए)। तुष्टि—तृप्त। ('दुष्ट' के स्थान पर 'तुष्टि' पाठ होना चाहिए)। ओछे—नीच। अनुसारत—सेवते हैं। पारत—पालते हैं।

भावार्थ—भगवान् की भक्तवत्सलता का वर्णन नहीं हो सकता। वे किसी के वंश, मर्यादा या ऊँच-नीच वर्ण का भेद-भाव नहीं मानते। सबका समान रूप से उद्धार करते हैं। परमात्मा की गति कुछ कही नहीं जा सकती; उन्होंने व्याध और अजामिल तक का उद्धार किया। उदाहरण के लिए विदुर को ही लीजिए, उनकी क्या जाति थी और कौनसा वंश था जिसके साथ उन्होंने प्रेम का व्यवहार किया। ('पगधारत' का अर्थ होगा उनके घर प्रभु ने पैर रक्खा, उनके घर गए) दुर्योधन द्वारा दिये जाने वाले राज-सम्मान और अपने पद (अपनी मर्यादा) की परवाह न कर के खूब तृप्त होकर विदुर जी के घर भोजन किया। जो जन्म और कर्म दोनों के विचार से नीच हैं, और जो नीच ही कह कर पुकारे जाते हैं उन भक्तों के लिए अन्त में सूर के स्वामी श्रीकृष्ण की सहायता ही काम आती है। क्योंकि वे स्वभाव से ही भक्तवत्सल हैं और अपने प्रण का पालन करते हैं ॥१२॥

१३. गोविंद प्रीति सबन की मानत—

शब्दार्थ—गोबिन्द—श्रीकृष्ण। भाय—भाव। अन्तर्गत—अन्तः-

करण, हृदय । कटुक—खट्टे, कड़वे । सतभाई—सद्भाव से, स्वाद से । साग—शाक । अघाये—तृप्त हुए ।

भावार्थ—भगवान् सब के प्रेम को मान देते हैं । जो भक्त जिस भाव से सेवा कर रहा है उसके हृदय के उस भाव का उन्हें पता है । शबरी ने बेरों को चख कर, खट्टे-खट्टे निकाल कर, मीठे-मीठे लाकर उन्हें दिए थे, लेकिन उन्होंने बेरों के झूठे होने की कुछ परवाह न की वरन् उन्हें खूब स्वाद के साथ खाया । संतों, भक्तों और मित्रों के हितैषी भगवान् जब विदुर के घर गए तो भक्ति से गद्गद् विदुर द्वारा दिए गए शाक को बड़े प्रेम से खा गए । विदुर के लिए उनके हृदय में अत्यधिक प्रीति बढ़ी । पांडवों के काम के लिए प्रभु स्वयं चल कर आए और (ऋषि दुर्वासा को) उन्होंने अपने एक शाक के पत्ते से तृप्त कर दिया । सूरदास जी कहते हैं कि ऐसे करुणानिधान प्रभु ने सदा ही अपनी भक्ति भावना द्वारा भक्तों को प्रोत्साहन दिया है ॥१३॥

(कथाएँ परिशिष्ट में देखिए)

(मूल पुस्तक में पाँचवीं पंक्ति में 'भाखि' के स्थान पर 'चाखि' पाठ चाहिए । 'पांडव काज चले प्रभु आपन' के स्थान पर भी ठीक पाठ 'कौरव काज चले ऋषि सापन' है) ।

१४. शरण गये को को न उबार्यो—

शब्दार्थ—को को न—किस किस को नहीं । उबारयो—बचाया, रक्षा की । नरहरि—नृसिंह । बूडत—डूबते ।

भावार्थ—किस किस शरणागत की भगवान् ने रक्षा नहीं की ? जब जब सन्तों पर आपत्ति आई, तब तब आपने उनकी सहायता के लिए सुदर्शन चक्र उठाया । हे प्रभो ! आप अम्बरीष राजा के लिए आशीर्वाद रूप हुए और दुर्वासा के क्रोध का आपने निवारण

किया। ग्वाल-बाल के हितार्थ आपने गोवर्द्धन पर्वत को धारण किया और इस प्रकार प्रकट रूप से इन्द्र के मान को चूर्ण किया। जब प्रह्लाद भक्त पर आपत्ति आई थी तब आपने स्तम्भ विदीर्ण कर, नृसिंह रूप धारण कर, प्रह्लाद के ऊपर दया कर, क्षण में ही हिरण्यकशिपु को मार डाला। जब मगर हाथी को पकड़ कर जल में लिये जाता था तो उसने आप का नाम मात्र स्मरण किया। उसकी पुकार सुनते ही आपने उसे ग्राह के मुख से छुड़ाकर उस के अपार कष्टों को निवारण किया। सूरदास जी कहते हैं कि हे घनश्याम! आपके बिना ऐसा कौन कर सकता है? रंगभूमि में कंस जैसे योद्धा को आप ही ने पछाड़ डाला। ॥१४॥

१५. जन की और कौन पत राखै—

शब्दार्थ—जन की—भक्त की। पत—लज्जा। कुल कानि—वंश-मर्यादा। साखै—साक्षी। शापत—शाप से। नाश्यो—नष्ट किया। त्रास्यो—भयभीत हुआ। चरणोदक—चरणजल, गंगा। निजकर—अपने हाथ से। पखारी—धोए। इतरायो—अभिमान किया हो।

भावार्थ—भगवान् के सिवाय और कौन भक्त की लज्जा रखने वाला है? भगवान् किसी की जाति-पाँति और वंश मर्यादा को नहीं गिनते, वेद और पुराण इसके साक्षी हैं। जिस यदुकुल में जन्म लेकर भगवान् ने द्वारका में राज्य किया उसी को अभिमान के कारण मुनि के शाप से नष्ट करवा दिया। वही दुर्वासा मुनि राजा अम्बरीष के कारण तीनों लोकों में भयभीत हो कर घूमे पर कोई भी उन की सुदर्शन-चक्र से रक्षा न कर सका। भगवान् तीनों लोकों का हित करने वाले हैं—जिनके चरण-जल अर्थात् गंगाजी को शिव जी ने सिर पर धारण किया, उसी भगवान् कृष्ण ने पांडवों की भक्ति के

कारण युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उनके अतिथियों के चरण धोए। बारह वर्ष पर्यन्त वसुदेव और देवकी को कंस ने महा दुःख दिया। अन्त में भगवान् ने उनका दुःख दूर कर दिया। उसी भगवान् ने प्रह्लाद के स्मरण करते ही नृसिंह रूप धारण कर उसे कष्ट से मुक्त किया। संसार जानता है कि कितने भक्तों को प्रभु ने अपनी भुजाओं के परिश्रम से सुखी बनाया है। सूरदास जी कहते हैं ऐसा कौन है जो प्रभु की शरण जाने से इतराया हो ॥१५॥

१६. जब जब दीनन कठिन परी--

शब्दार्थ--दीनन--दीन जनों पर। कठिन परी--विपत्ति पड़ी या कठिनाई आई। हौ--हो। ब्रह्मशापते--ब्रह्मास्त्र से। गर्व--गर्भ। उबारयो--बचाया। टेरत--पुकारती थी। जरी जरी--जली जली।

भावार्थ--हे प्रभो! जब जब दीन जनों को विपत्ति का सामना करना पड़ा, तब तब हे करुणामय! आपने उनकी कठिनाइयों को जानकर उन्हें सरल बना दिया और उन्हें आपत्ति से छुड़ा दिया। सभा में लाकर जब दुष्ट दुःशासन द्रौपदी को नग्न करना चाहता था, उस समय उसके स्मरण करते ही आपने उसके चीर को बढ़ा कर उसे दुःख के सागर से निकाल लिया; उसकी लज्जा बचा दी। जब उत्तरा के गर्भस्थ बालक को मारने के लिए कुपित हो कर अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र छोड़ा, तो उसके तेज से उत्तरा--"मैं जली, मैं जली" कहकर चीखने लगी। उस विपत्ति काल में भगवान् ने ही अपने सुदर्शन चक्र से गर्भ के बालक परीक्षित की रक्षा की। जब जब भक्तजनों पर विपत्ति पड़ी तब तब भगवान् ने उनकी रक्षा की। विपत्तिकाल में पाँडव-बंधुओं की आपने सहायता की। उनके यज्ञ की आहुति को आपने ग्रहण किया। अपने भक्तों की इच्छाओं को पूरा किया तथा संसार में उनकी मर्यादा

की प्रतिष्ठापना की। इतना होने पर भी हे सूरदास के स्वामी आप मुझ अकिंचन भक्त को क्यों भूल गये हैं? वह भी तो सांसारिक माया-मोह में लिप्त होकर कष्ट भोग रहा है ॥१६॥

१७. और न काहुहि जन की पीर--

शब्दार्थ--पीर—पीड़ा। काहुहि—किसी को। बलबीर—बलदेव के भाई, श्रीकृष्ण। मागध—जरासंध। हन्यो—मारा। बिलोकि दशौ दिशि—दसों दिशाओं में देखकर। सन्ताप—दुःख। विप्रसुत—ब्राह्मण के पुत्र, गुरु सांदीपनी के पुत्र। बपु—शरीर। द्रुपद-तनया—द्रौपदी। पट—वस्त्र। व्रजपति—नन्द। छुकरायो—मुक्त किया। दावानल—दावाग्नि। महाखल—महा दुष्ट। श्रीपति—लक्ष्मीपति। याचत—माँगता है। प्रतिपारयो--प्रतिपालन किया, पूरा किया।

भावार्थ---भगवान् के सिवाय और भक्तों की पीड़ा जानने वाला कोई भी नहीं है। सिर्फ भगवान् ही भक्तों की पीड़ा को दूर करने वाले हैं। जब जब भक्त जन दीन-दुखी हुए तब तब भगवान् ने उन पर दया की। हाथी ने जब बलहीन हो कर दशों दिशाओं में सहायता के लिए देखा पर कोई सहायक न दिखाई दिया तब अन्त में भगवान् की शरण आया। फिर क्या था, करुणासिन्धु परमात्मा ने दर्शन देकर उस का कष्ट दूर कर दिया। गोप-गोपियों, ग्वाल-बालों, गायों तथा गाय के बछड़ों के लिए भगवान् ने सात दिन तक गोवर्द्धन पर्वत उठाये रक्खा। भगवान् श्रीकृष्ण ने जरासन्ध को मारकर राजाओं को उसके बन्धन से मुक्त किया। अपने गुरु सांदीपनी के पुत्र को यमलोक से लाकर गुरु को समर्पित किया। असुर (प्रह्लाद) के लिए नृसिंह रूप धारण कर उसके वचनों को पूरा किया। द्रौपदी के नाम स्मरण करते ही उसके चीर को बढ़ा दिया। मुनि दुर्वासा के अभिमान को चूर्ण कर

अपने भक्त अम्बरीष के व्रत को रक्खा। लाक्षागृह में शत्रुओं की सेना से पांडवों की विपत्ति दूर की। वरुण के पाश में पड़े हुए नन्द जी को छुड़ाया। दावाग्नि पी कर उस के भय को दूर कर दिया। वसुदेव-देवकी के घर जन्म लेकर और महादुष्ट कंस को मारकर उन्हें दुःख से छुड़ाया। भगवान् युग युग से भक्त के वश में चले आते हैं। देवता लोग प्रभु के निर्मल यश को गाते हैं। सूरदास जी माँगते हैं कि ऐसा कोई है जो अशरण-शरण भगवान् को मेरा स्मरण करा दे, मेरा ध्यान दिला दे।

(मूल पुस्तक में अंतिम पंक्ति में 'सुरपति बचावै' के स्थान पर 'सुरति करावै' पाठ चाहिए)।

१८. ठकुरायत गिरधरजू की साँची—

शब्दार्थ—ठकुरायत—प्रभुत्व। गिरधरजूकी—श्रीकृष्ण की। भ्रुव भंग की आँची—कुटिल भृकुटि की आँच से। अयाची—अयाचक, न माँगने वाला। काँची—कच्ची। चहूँयुग—चारों युग। (मूल पुस्तक में 'छहूँ' के स्थान पर 'चहूँ' पाठ होना चाहिए)। खाँची—पत्थर की लकीर हो गई।

भावार्थ—प्रभुत्व भगवान् का ही सच्चा है। भगवान् के प्रभुत्व ही से पांडव कौरवों पर विजयी हुए, युधिष्ठिर राजा हुआ और तीनों लोकों में उसकी कीर्ति फैली। जिस काल से ब्रह्मा और शिव भी भय खाते है वही काल भगवान की कुटिल भृकुटी की आँच से भयभीत रहता है। महा बलवान् लंकाधिपति रावण, जिसके सिर पर भगवान् की प्रबल माया ने अपना नृत्य किया, उसको इस संसार से बिदा होने में कुछ देर न लगी। भगवान् ने अपने गुरु-पुत्र को यमलोक से लाकर दिया तथा याचक सुदामा को इतना धन दिया कि उसको अयाचक बना दिया—उसका भीख

माँगना छुड़ा दिया। दु:शासन के चीर हरण के समय ज्योंही द्रौपदी ने भगवान् का नामोच्चारण किया त्योंही प्रभु ने दर्शन देकर उसके वस्त्र को बढ़ा कर उसकी लज्जा बचा दी। ऐसे प्रभु के कमल-चरणों को छोड़ कर जिनकी मति अन्यत्र जाती है वे सच-मुच अपरिपक्व बुद्धि के हैं। सूरदास जी कहते हैं कि जो भगवान् का भजन करते हैं उनकी लीक चारों युगों में अमिट हो जाती है ॥१८॥ (मूल पुस्तक में दूसरी पंक्ति में 'जाती' के स्थान पर 'जीति' पाठ चाहिए)।

१९. हरि के जन सबते अधिकारी—

शब्दार्थ—हरि के जन—हरि के भक्त। सबते अधिकारी—सब से बड़े। को बढ़ि—क्या बड़प्पन। याचक—मंगता, माँगने वाला, भिख-मंगा। गणिका—वेश्या। साख—प्रमाण, साक्षी। खुआरी—नष्ट, बर्बाद। बलि—बलिहारी। वाही—उन। प्रदक्षिणा—चारों ओर फिरना। जननि—माता।

भावार्थ—भगवान् के भक्त सबसे बड़े हैं। ब्रह्मा और शिवादि देवताओं का क्या महत्त्व! जिनके सेवक स्वयं भीख माँगते फिरते हैं। भिखमंगों से भिखमंगा क्या माँगेगा? जो माँगेगा भी, तो वाणी व्यर्थ जायेगी, कुछ भी पल्ले नहीं पड़ेगा। भला, वेश्या का पुत्र, जिसके वंश और पिता का कुछ पता नहीं, वह क्या शोभा पा सकता है? हिरण्यकश्यप और रावण इसके प्रमाण हैं जो सकुटुम्ब नाश को प्राप्त हुए। भगवान् ने अपने भक्त प्रह्लाद की प्रतिज्ञा पूरी की और प्रभु की दया से विभीषण तो अभी तक राज्य कर रहा है। समुद्र में पुल बाँधते समय प्रभु की दया से पत्थर जल में तरे। प्रभु के उन चरणों की बलिहारी! जिनके स्पर्श से पाषाणी अहल्या तर गई। जो कोई भगवान की

शरण में आया भगवान् ने उसकी बड़ी से बड़ी आपदा को दूर किया। भगवान ने अपने भक्त ध्रुव जी को अटल पद प्रदान किया। सूर्य चन्द्र प्रभु की प्रदक्षिणा करते करते थक गए। सूरदास जी कहते हैं जिसने भगवान् का भजन नहीं किया उसने व्यर्थ माता को नौ महीने बोझ से मारा ॥१६॥

२०. जा पर दीनानाथ ढरे--

शब्दार्थ—दीनानाथ—दीनों के स्वामी। ढरे—प्रसन्न हुए। कुलीन—उच्च वंशज। गर्व—अहंकार, अभिमान। रंकव—गरीब। वियोग—जुदाई। कुबिजा—कुब्जा। बरे—वरण किये। अजामिल—एक पतित ब्राह्मण जिसने अपने पुत्र का—जिसका नाम नारायण था—नाम लेकर मोक्ष को प्राप्त कर लिया। जरठ—पेट, गर्भ, आवागमन।

भावार्थ—जिस पर भगवान् प्रसन्न होते हैं वही कुलीन है और वही सुन्दर है। रावण से बड़ा और कौन राजा होगा लेकिन—भगवान् का कोप भाजन होने से—उसका अभिमान जाता रहा। वह अपने अहंकार ही अहंकार में गल गया। सुदामा से अधिक कौन गरीब था पर उसे प्रभु ने प्रसन्न होकर अपने समान बना दिया। सीता से अधिक कौन सुन्दरी थी, पर भगवान् की दया न होने से उसे आजन्म वियोग का दुःख सहना पड़ा। कुब्जा से अधिक बदसूरत कौन थी पर प्रभु की दया से स्वयं कृष्ण को ही उसने पति रूप से वरण किया। नारद जी तो सबसे अधिक विरक्त महात्मा हैं, परन्तु उन्हें भी रात-दिन संसार में भ्रमण करना पड़ता है। अजामिल से अधिक पापी कौन था, जिसके पास जाने से स्वयं यम भी भय खाता था, पर प्रभु की दया से नाम लेते ही उसका उद्धार हो गया। सूरदास जी कहते हैं कि भगवान् के

भजन के बिना जीव को गर्भवास की यंत्रणा भोगनी पड़ती है—बार बार जन्मने और मरने का दुःख उठाना पड़ता है ॥२०॥

२१. जाको दीनानाथ निवाजै—

शब्दार्थ—निवाजै—दया करें, प्रसन्न हों। निशाने—नगाड़े। गाजै—गरजा। दिवाजै—दुःराज, कुराज, कुशासन। अम्बर—वस्त्र। गहत—पकड़ते हुए। अंधसुत—दुःशासन। साजै—शोभा बढ़ाते हैं।

भावार्थ—जिस पर भगवान दया करते हैं वह संसार रूपी समुद्र में कभी नहीं गिरता और उसके अभय के नगाड़े बजते हैं—उसे किसी प्रकार का भय नहीं रहता। भगवान् ने प्रसन्न होकर सुदामा को नवनिधियाँ प्रदान कीं और उन्हीं के बल पर अर्जुन युद्ध में गरजा। प्रभु की दया से ही विभीषण ने लंका के राज्य का उपभोग किया, ध्रुव जी आकाश में अटल पद पाकर शोभित हुए। भगवान् ने प्रजा के हित के लिए केशी और कंस आदि अत्याचारियों को मार कर कुशासन का अन्त कर दिया। प्रभु की कृपा से ही उग्रसेन ने सिर पर छत्र धारण किया तथा प्रभु के भय से ही दानव इधर उधर छिपने के लिए भागे फिरते हैं। दुःशासन ने द्रौपदी का चीर हरण करना चाहा परन्तु भगवान् ने उसकी लज्जा रख ली, उलटे दुःशासन ही लज्जा से अपमानित हुआ। सूरदास जी कहते हैं कि भगवान् अपनी भक्ति के कारण सुजाति और कुजाति सब की शोभा बढ़ाते हैं, वे जाति पाँति कुछ नहीं गिनते ॥२१॥

२२. जाको मनमोहन अंग करै—

शब्दार्थ—मनमोहन—श्रीकृष्ण। अंगकरै—रक्षा करता है। उत्तानपादसुत—ध्रुव। द्रुपदतनया—द्रौपदी।

भावार्थ—जिसकी भगवान् रक्षा करते हैं उसका चाहे सारा

संसार वरी हो जाय तो भी उसके सिर का एक बाल भी बाँका नहीं हो सकता। देखो, हिरण्यकशिपु प्रह्लाद को कष्ट देने से अन्त में हार ही गया परन्तु प्रह्लाद ज़रा भी भयभीत नहीं हुआ। ध्रुव जी अभी तक राज्य करते हैं, उनकी मृत्यु नहीं हुई, क्योंकि भगवान् उनके रक्षक हैं। दुःशासन ने क्रोधित होकर द्रौपदी का चीर हरण करना चाहा परन्तु भगवान् उसके रक्षक थे, उन्होंने उसकी लज्जा बचा दी। भगवान् ने दुर्योधन का मान भंग कर वस्त्र के प्रवाह से राजसभा को भर दिया, पर द्रौपदी के चीर का अन्त न हुआ, वह ज्यों की त्यों खड़ी रही। देखो, ब्राह्मणों का परम-भक्त राजा नृग गिरगिट होकर अंधकूप में जा गिरा। महादानी राजा बलि को भगवान् ने पाताल भेज दिया। हे दीनदयालु! हे कृपानिधि! प्रभो आपकी महिमा वर्णन करने में कौन पार पा सकता है। इन्द्र ने कुपित होकर व्रज पर प्रलय की जलवृष्टि की परन्तु उससे भी कुछ न बन पड़ा क्योंकि भगवान् ने गोवर्द्धन पर्वत धारण कर व्रजवासियों की रक्षा की; इससे उसके क्रोध का कुछ भी असर न हुआ। जिस भगवान् का गर्व-प्रहारी बाना है भला, वह अपने बाने को कैसे भुला सकता है? सूरदास जी कहते हैं कि हे मानव! भगवान् का भजन कर और उन्हीं की शरण ग्रहण कर, तभी तेरा उद्धार होगा ॥२२॥

२३. जाको हरि अंगीकार कियो—

शब्दार्थ—अंगीकार—स्वीकार। कोटि विघ्न—करोड़ों विघ्न बाधाएँ। शासना—कष्ट, तकलीफ। निशंक—निर्भय।

शब्दार्थ—जिसको भगवान ने स्वीकार कर लिया उसकी करोड़ों विघ्न-बाधाएँ हरण करके, उसे बड़ा बल-प्रताप प्रदान कर निर्भय कर दिया। दुर्वासा ने भगवान् के भक्त अंबरीष को सताया।

इस पर राजा अम्बरीष ने भगवान् की शरण ग्रहण की तो भगवान् ने उसकी लज्जा बचाई और दुर्वासा को उसी के पास क्षमा माँगने को भेजा। इसी प्रकार जब हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को बहुत से कष्ट दिए तब भगवान् ने खम्भे से प्रकट होकर, हिरण्यकशिपु का वध कर प्रह्लाद को निर्भय कर दिया। भगवान् ने विष-जल पीकर मरे हुए अपने ग्वाल-सखाओं को जीवित कर दिया। सूरदास जी कहते हैं कि भगवान् भक्त वत्सल हैं, उनकी हम क्या बड़ाई करें—उन्हें क्या उपमा दें, वे तो अनुपम हैं ॥२३॥

२४. कहा कमी जाके राम धनी—

शब्दार्थ—धनी—स्वामी। छनी—क्षण भर में। बपुरा—बेचारा। भुजंग—सर्प। तनी—रस्सी। मौज—मन की उमंग।

भावार्थ—सब आशाओं को पूर्ण करने वाले, सुख के धाम, भगवान् जिसके स्वामी हों उसको किस बात की कमी है? वे प्रभु धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थों को क्षण भर में प्रदान कर देते हैं। जिन प्रभु के इन्द्र के समान सेवक हैं उन में मुझ बेचारे की क्या गणना? कंजूस का धन वैभव कितना है, जिसको वह मेरा मेरा कहता फिरता है। वह अपने धन को न खाता है न खरचता है, उसके लिए वह धन सर्प की मणि के समान व्यर्थ है। सूरदास जी कहते हैं कि जो दुःख-सन्ताप की डोरी काट कर ब्रह्मानन्द में मग्न होकर राम का गुण गान करते हैं उनकी और भगवान् की हमेशा ही बनी रहती है ॥२४॥

२५. हरिजू के जनकी अति ठकुराई—

शब्दार्थ—ठकुराई—प्रभुता। रँगराते—प्रेम में मग्न। सकाते—शंकित होते। पौरिया—द्वारपाल।

भावार्थ—भगवान् के भक्त की प्रभुता बहुत महान है। बड़े-बड़े

राजा-महाराजा, ऋषि-मुनि, देवता और मनुष्य सब उसे देखकर लज्जित होते हैं। भगवान ने प्रसन्न होकर उसे निर्भय राजपद प्रदान किया है। जब से भक्त को निर्भय राजपद मिला है तब से उसके लिए काम, क्रोध, मद, मोह और लोभ सब चोर से साहू (ईमानदार) बन गए हैं। दृढ़ विश्वास रूपी सिंहासन पर भक्त रूपी राजा बैठा। परम अनुपम हरियश रूपी निर्मल मुकुट उसके सिर पर शोभित हुआ। जिस प्रकार सुन्दर राजा अपने प्रजा-प्रेम में रँगा रहता है, उसी प्रकार भक्त रूपी राजा भगवान् के चरणकमल रूपी प्रजा-प्रेम में रँगा है। जैसे राजा के मंत्री को राज-काज से अवसर नहीं मिलता वैसे ही भक्तरूपी राजा के ज्ञानरूपी मंत्री को हरिभक्ति रूपी राज-काज से फ़ुरसत नहीं मिलती। भक्तरूपी राजा के यहाँ अर्थ और धर्म हाथ जोड़ कर बैठे रहते हैं तथा काम और मोक्ष सदा सिर झुकाए रहते हैं। भक्त रूपी राजा के विनय और विवेक विचित्र ड्योढ़ीवान है, जिन्हें अपने कार्य से कभी छुट्टी ही नहीं मिलती, जो सदा अपनी ड्यूटी पर हाजिर रहते हैं। भक्तरूपी राजा के आगे अष्ट सिद्धियाँ और नवनिधियाँ सदा हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं। यहाँ के द्वाररक्षकों ने व्यर्थ की विनोद-प्रियता (विलासिता) को बाहर कर रक्खा है। जो इस भक्ति-पथ को जानता है उसको काल की कादरता परिव्याप्त नहीं होती। केवल वही भक्त जन उसको जान सकता है जिस पर गुरु की अनुकंपा होती है ॥२५॥

२६. बिनती सुनो दीन की चित दै—

शब्दार्थ—लै—लेकर। बौरावै—पागल कर देती है।

भावार्थ—हे भगवान! ज़रा, मुझ दीन की प्रार्थना चित्त लगा कर सुनिए। मैं आपके गुण कैसे (मूल पुस्तक में 'कैखे' के स्थान पर 'कैसे' चाहिए) गा सकता हूँ जब कि आपकी

माया रूपी नटिनी हाथ में छड़ी लिए मुझे करोड़ों नाच नचाती है। लोभ में डालकर नानाप्रकार के स्वाँग रचाकर, दर दर भटकाती है। और क्या कहें, मेरी बुद्धि को भ्रमा कर स्वयं आप से भी कपट करवाती है। मन में झूठी आशा-तरंगें उठा उठा कर रात्रि भर जगाती है और स्वप्न की सी झूठी सम्पत्ति दिखाकर पागल बना देती है। यह महा मोहनी माया रूपी नटिनी आत्मा को मोह कर और मन को वश में करके उन्हें पाप में लगाती है। जिस प्रकार दूती दूसरे की स्त्री को भुलाकर तथा फुसला कर दूसरे पुरुष से मिला देती है ठीक वैसी ही यह माया-नटिनी भी है। यह भी झूठे में डालकर मन को पाप मार्ग में प्रवृत्त कर देती है। हे प्रभो! मेरे तो तुम्हीं पति हो, तुम ही गति हो। मेरे लिए आपके समान दूसरा और कौन है? मेरे सब कुछ आप ही हैं। सूरदास जी कहते हैं कि हे प्रभो! आपकी कृपा बिना मेरे दुःखों को कौन दूर कर सकता है? ॥२६॥

२७. बिनै कासों कहों दीनबन्धो—

शब्दार्थ—जन्मकृत—जन्म भर के किए हुए। अकृत—पाप। चकृतचित्त—चकित हुआ चित्त। द्विज—अजामिल ब्राह्मण। गनिका—वेश्या। लौलीन—लवलीन, लग्न। अघ—पाप। सकृत—पुण्य। श्रुति—वेद। शलधारे—शरधारे, धनुष बाण धारण किए। (मूल पुस्तक में 'शूलधारे' के स्थान पर 'शलधारे' चाहिए) अमित—अनगनित। विक्रम—बल पौरुष। विरंचि—ब्रह्मा। मुनिजन अगम लोक—वैकुंठ लोक। पारे—प्राप्त हुए। कलिमल—कलयुग के पाप।

भावार्थ—हे भगवन्! आप के सिवाय और किससे प्रार्थना करूँ। जन्म भर के किए हुए पापों से चकित हुए चित्त को हे दयानिधि, अपनी शरण में रखिए। पाप में लवलीन हुए अजा-

भिल और गणिका को आपने तारा तथा क्षुद्र पूतना को मार डाला। हाथी के समान जिन पुण्यशालियों ने एकबार भी भगवान् का नाम लिया भगवान् ने अवश्य ही उनका दुःख दूर किया। ध्रुव को अटल पद पर स्थिर कर दिया। प्रह्लाद पर विश्वास कर हिरण्य-कशिपु के वक्षःस्थल को नाखून से विदीर्ण कर डाला। हाथी की प्रार्थना स्वीकार कर और उसके तन को स्पर्श कर उसकी सारी पीड़ा दूर कर दी। द्रौपदी की लज्जा निवारण कर उसको धैर्य प्रदान किया। क्रोध के समान कलुष और मदान्ध रावण और जरासन्ध को मार कर आपने मोक्ष प्रदान कर दिया। ऐसे धनुष-बाण धारण करने वाले भगवान् मेरे नेत्रों में बसें जिनके पाने के लिए अपरिमित बल विक्रम वाले शिव और ब्रह्मा भी भ्रमते रहते हैं तथा जिनका यश तीनों लोकों में छा रहा है, वेद जिनका गुण गान करते हैं तथा जो मुनि दुर्लभ लोक में निवास करते हैं। सूरदास जी कहते हैं कि हे कलियुग के पाप-ताप को हरण करने वाले प्रभो! हे कल्याणमय परमात्मा ! मुझे अपना सम्मान प्रदान कीजिए ॥२७॥

२८. विनती करत मरत हौं लाज—

शब्दार्थ—लवमुनि—बड़े दीर्घायु लोमस ऋषि। जस = जैसे। आँखितर—दृष्टिगत। सिरताज—शिरोमणि। नान्हे रून्हे—छोटे छोटे।

भावार्थ—हे प्रभो ! आपसे विनती करते भी लज्जा से मरता हूँ—मुझे बड़ी लज्जा आती है। नख से लेकर शिखा तक मेरी यह देह पाप का जहाज़ बन रही है अर्थात् नख से शिखा तक मुझ में पाप भरे हुए हैं। मैं पापपंक में लिप्त हो रहा हूँ। जैसे दीर्घ आयु वाले लोमस ऋषि नहीं रहे वैसे ही सब दृष्टिगत होने वाले मेरे ये साज सामान भी नहीं रहेंगे। मैंने अपनी तीनों अवस्थाएँ व्यर्थ ही खो दीं। फिर भी मैं पाप-कर्मों से बाज नहीं आया—दूर नहीं रहा।

हे प्रभो! मैं सदा आपके पीछे ही रहा—आपसे विमुख रहा—कभी सम्मुख नहीं हुआ—कभी आपके अनुकूल कार्य नहीं किया। मैं समस्त पापियों का राजा हूँ—सबसे बड़ा पापी हूँ। मेरा नाम ही सुनकर नरक तो घबड़ा कर भाग खड़ा हुआ और यमराज भी मेरे पापों से ऐसे भयभीत हुए कि उन्हें भी आखिर पीठ दिखा कर भागना पड़ा। हे प्रभो! आज तक आपने छोटे छोटे पापियों को तारा है, वह आपका सब परिश्रम नहीं के बराबर है, उसका कुछ मूल्य नहीं है। सच्चा पतिततारन-विरद तो आपको तभी प्राप्त हो सकेगा—सच्चे पतित-उद्धारक तो आप तभी कहे जायँगे—जब सूरदास जैसे महापापियों को तारें। तभी लोक-लोक में आपके यश की आवाज पहुँच सकती है। आपका यश हो सकता है, अन्यथा आपके समस्त कार्य अकार्य ही हैं ॥२८॥

२९. हरि तेरी माया कौन विगोयो—

शब्दार्थ—कौन बिगोयो—कौन बचा है, कौन नहीं भ्रमाया। बिलोयो—मथ डाला। मोहनी—माया। गरद समोयो—धूल में मिल गया। कंचन—स्वर्ण। धगा—तागा, तार। जोयो—देखा।

भावार्थ—हे प्रभो! तेरी माया से किसने छुटकारा पाया है? किसको उसने नहीं भ्रमाया है? देखो, सौ योजन विस्तार वाला समुद्र जिसे अपने विस्तार का बड़ा अभिमान था, उसे राम ने पल भर में मथ डाला। नारद जी जिन्हें काम-विजय का बड़ा अभिमान था, वे भी माया में निमग्न होकर अपना ज्ञान, बुद्धि और बल सब खो बैठे। साठ पुत्र और द्वादश कन्या वाला रावण जो उन्हें देखकर कंठ से लगाता था—बहुत प्यार करता था, उन्हें जब वह तेरी माया के वश में होकर जला कर नष्ट कर चुका, तब वह उनके लिए जार-जार—फूट-फूट कर रोया। सौ भाइयों वाला

दुर्योधन तेरी माया के कारण ही उन्हें पल भर में मिट्टी में मिला बैठा। सूरदास जी कहते हैं कि हे प्रभो ! आपने अपनी माया द्वारा काँच और सोने को एक ही धागे में पिरो रक्खा है ॥२६॥

३०. तुम्हरी माया महाबली—

शब्दार्थ—नेकु—ज़रा। चितै—देखकर। राच्यो—लुब्ध होगया। उत्पातते—उपद्रव से। अकथ—अकथनीय। छैलन—बाँके। डहके—ठगे। श्वेत उपरना—श्वेत ओढ़नी। राती—लाल। चूनरी—चोली। अमर—देवता। अँतरौटा—साड़ी के नीचे पहनने का वस्त्र (मूल पुस्तक में 'अँजरौटा' के स्थान 'अँतरौटा' चाहिए)। टोना—जादू। विरचि—रचकर विगोवै—अघाती है। बरजिकै—रोककर। गारी—ग्लानि।

भावार्थ—हे प्रभो आपकी माया बड़ी बलवती है जिसने सारे संसार को वश में कर रक्खा है। इस (माया) ने ज़रा सा देख कर और मंद मुसकराकर सारे संसार के मन को वश में कर लिया है। इसके वश में होकर सांसारिक लोग कुल-धर्म का कुछ विचार न कर सिर्फ रूप पर मर जाते हैं। ऐसा न कोई देखा और सुना गया है जो इसके ठगने से बचा हो। इसके उत्पातों को सुनकर ही शुक सनकादि संसार से विरक्त हो गए। इसके कारण ही कई ऋषि-मुनियों की लोक-लज्जा तक जाती रही और उनमें ऋषि-अयोग्य काम, क्रोध, मद आदि कुभावों की जाग्रति हो गई। हे प्रभो, आपकी माया की अकथनीय कथाएँ कही नहीं जा सकतीं। यह बाँके सुकुमारों के साथ-साथ इस प्रकार घूमती है जैसे शरीर के साथ साथ छाया फिरती है। इस प्रकार इसके द्वारा जल और थल के सब प्राणी ठगे जाते हैं। हे चतुर-शिरोमणि नन्दनन्दन ! और इसकी क्या क्या कथाएँ वर्णन करूँ ! इसने कभी मोहनी रूप धारण किया था, लाल चोली पहनी, सिर पर

श्वेत ओढ़नी धारण की, कमर में लँहगा पहना, इतना सुन्दर कि उसे देखते ही मन मोहित हो जाता था ! उसकी चोली को देखकर ब्रह्मा ठगे गये, देवता तो ओढ़नी ही पर मोहित हो गये। इसके अँतरौटे पर सब असुर मद-मस्त हो गए । शिव जी की तो ज्योंही उस पर जरा दृष्टि पड़ी, कि वे मंत्रमुग्ध की भाँति सब योग-युक्तियों को भुलाकर, उठकर इसके पीछे भाग पड़े । हे प्रभो, इस माया का कहाँ तक वर्णन करूँ इससे कोई भी पुरुष बचने नहीं पाया है। इस माया की लीला जरा और देखिए—जो सुख की नींद में सोया पड़ा है उसे यह जाकर जगा देती है, उसके मन में बेचैनी पैदा कर देती है। किसी को यह जरा दर्शन देकर ही ठग लेती है, किसी को यह साथ लेकर सोती है, किसी को लेकर यह अट्टालिका पर चढ़ती है, और किसी को अपना मोहनी रूप रचकर भ्रमाती है। सब भक्त आप से पुकार पुकार कर कहते हैं कि हे प्रभो, हम इसकी लज्जा से मरे जाते हैं। इसलिए हे भगवन्! इसको रोककर हमारी ग्लानि को दूर कीजिए ॥३०॥

३१. हरि तेरो कियो न जाई—

शब्दार्थ—नटवा—नट । लुभाई—भुला देती है, मोहित कर देती है ।

भावार्थ—हे प्रभो ! आपकी दया के बिना माया का प्रभाव दूर नहीं किया जा सकता। हम क्या करें आपकी प्रबल माया अपनी लहर में बहा ले जाती है, जब कभी साधु-संगति में आता हूँ; उससे मन ज़रा स्थिर होता है, पर माया के प्रभाव से थोड़ी देर में फिर वह पहले जैसा चंचल हो जाता है; जैसे हाथी नदी में स्नान कर जरा साफ होता है परन्तु अपने स्वभाव के वशीभूत

होकर धूल सिर में डाल लेता है और फिर ज्यों का त्यों बन जाता है। माया के वश में होकर ही मैंने नाना वेश धारण कर, साधु कहला कर, दूसरे के धन का अपहरण किया है। मैंने नट और बहुरूपिया की तरह लोभ के कारण कई स्वाँग रचे। परन्तु हे प्रभो, मन को स्थिर कर के और यत्न कर कभी भी मैंने आपका भजन नहीं किया, क्योंकि आपकी प्रबल माया मुझे भुलावे में डाल देती है; कुछ करने नहीं देती ॥३१॥

३२. माधव जू मन माया वश कीनो—

शब्दार्थ—तूल—रुई। नटनी के शुक—नटनी के तोते की तरह।

भावार्थ—हे भगवान्! तेरी माया ने मेरा मन वश में कर लिया है। इससे मैं भलाई बुराई का कुछ विचार नहीं कर पाता हूँ। जिस प्रकार पतंग दीपक में जलकर अपना शरीर त्याग कर देता है, उसी प्रकार मैंने गृह-रूपी दीपक पर, जिसमें समय रूपी तेल, स्त्री रूपी बत्ती और पुत्र रूपी ज्वाला जल रही है, अपना शरीर अर्पित कर दिया है। मैं मूर्ख इसका मर्म नहीं जान सका, दौड़कर उस गृह-रूपी दीपक में जा पड़ा। मैं बिना गुरु के मोह-अज्ञान में ग्रसित होकर नटनी के तोते की भाँति विवश हो रहा हूँ। ज्ञान-अज्ञान कुछ भी मेरी समझ में नहीं आता, मैं अनेक दुःखों में पड़ा उन्हें सहन कर रहा हूँ। हे प्रभो! मुझ मतिहीन को संसार में भ्रमते बहुत दिन बीत गए। सूरदास जी कहते हैं कि यदि तू भगवान् श्रीकृष्ण का भजन करे तो फिर मतिहीन कैसे रह सकता है? अर्थात् भगवान् का भजन करने से तेरे बुद्धि निर्मल और पवित्र हो जायगी इस लिए प्रभू का स्मरण कर ॥३२॥

३३. माधव जू मेरी इक गाई—

शब्दार्थ—अमारग—कुमार्ग। निधरक—निर्भय। निबेरि—हटा लूँ, पृथक् कर लूँ। हरिहाई—चोरी से खेत खाने वाली।

भावार्थ—इस पद में सूरदास जी अविद्या-रूपी गाय का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे कृष्ण! मेरी एक गाय है। अब आगे से आप इसे चरा कर ले आवें। यह बड़ी हरहाई—चोरी से खेत खाने वाली है और सदा से कुमार्गगामिनी है। यह रात दिन वेद-वन में फिर कर ऊख उखाड़ कर खाती है। हे प्रभो! इसे प्रेम सहित अपने गोधन—गायों के झुण्ड—में ले लीजिए। अब मुझे सहारा दीजिए; आपके वचन सुनकर मैं सुखपूर्वक सोया रहूँ। आपके उपदेश से मैं ऐसा निर्भय हो जाऊँ कि फिर मुझे आवागमन का भय ही न रहे, जन्म मृत्यु के चक्कर में न पड़ूँ। मैं ममता को पहले ही अपनी इच्छा से दूर कर लूँ ॥३३॥

३४ कितक दिन हरि सुमिरन बिनु खोये—

शब्दार्थ—रसना—जिह्वा।

भावार्थ—मैंने कितने ही दिन भगवान् के भजन बिना खो दिए। दूसरों की निन्दा में मेरी जिह्वा रस की प्राप्ति करती रही। तेल लगा कर खूब रुचि से शरीर का मर्दन किया और खूब मलमल कर वस्त्र धोए। तिलक लगाकर और स्वामी बन कर कामिनियों का मुख देखता फिरा। बलवान् काल से सारा संसार काँपता है और ब्रह्मादि देवता भी उससे भयभीत रहते हैं। फिर मुझ अधम सूरदास की क्या गणना जो पेट भरना और सो रहना ही जानता है ॥३४॥

३५. माधव जू नेकु हटको गाइ—

शब्दार्थ—हटको—रोको। निशि वासर—रात दिन। अघात नहीं—तृप्त नहीं होती। निगम—वेद। द्रुम—वृक्ष। अभक्ष—न खाने

योग्य। भक्षति—खाती है। गिरा—वाणी। व्योम—नभ, आकाश। धर—धरती। शैल—पर्वत। कानन—वन। अष्टदश घट—अठारह पुराण। अँचवै—पी जाती है। गंध—वायु। अहित—अजीर्णकर।

भावार्थ—हे प्रभो! इस तृष्णा (माया) रूपिणी गाय को जरा रोकिए। वह रात-दिन इधर उधर घूमती रहती है। किसी प्रकार पकड़ने में नहीं आती। वह बहुत भूखी है, कभी तृप्त नहीं होती। वेद रूपी वृक्ष के पत्ते खाकर और अठारह पुराण रूपी घड़ों का पानी पीकर भी इसकी प्यास नहीं बुझी। छहों शास्त्र-रूपी रस और सुहावनी वायु से भी इसका मन नहीं भरा। यह ऐसे अहितकर अभक्ष्य पदार्थ खा जाती है जिसका वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता। पृथ्वी, आकाश, नदी, वन और पर्वतों में चर कर भी यह तृप्त नही हुई। यह त्रिगुणात्मक होने से बड़ी ढीठ, निर्दय और निडर है। दानवों और दुर्जनों की सेना से पराजित नहीं होती है। देवता और मनुष्यों के सिर चढ़ी रहती है—बड़ी प्रिय बन कर रहती है। ब्रह्मा के रचे हुए सुन्दर मुख और भौंहों के सौन्दर्य से यह चित्त चुरा लेती है। इस गाय के नीले तमोगुण रूपी खुर, लाल रजोगुण रूपी नेत्र और सुन्दर सुहावने सतोगुण रूपी सफेद सींग हैं। नित्य चौदह लोक रूपी खेत खूँदती—कुचलती फिरती है। इससे भी इसका निर्वाह नहीं होता अर्थात् चौदह भुवनों का ऐश्वर्य पाने पर भी इसकी तृप्ति नहीं होती। नारद और शुकादि मुनिजन इसको वश में करने के उद्योग में थक गए पर किसी से कुछ न बन पड़ा। हे प्रभो! फिर ऐसी इस तृष्णा-रूपी गाय को सूरदास कैसे चरा सकता है? अर्थात् जिस तृष्णा से नारदादि मुनि जन हार गए उससे सूरदास कैसे मुक्त हो सकता है?॥३५॥

३६. वंदौं चरण सरोज तुम्हारे--

शब्दार्थ—चरण-सरोज—चरण-कमल। दल—पत्ते। त्रिभंगी—तीन ओर से तिरछे। पद पद्म—चरण कमल। सिंधु सुता—लक्ष्मी। उर ते—हृदय से। नहिं टारे—नहीं हटाती। तातरिस त्रासत—पिता के क्रोध से भयभीत। परसि—स्पर्श। पावन—पवित्र। सुरसरि—गंगाजी अघ—पाप। ऋषि-पत्नी—अहल्या। अहिशिर—सर्प के सिर। व्रज-भामिनी—व्रज की स्त्रियाँ। सदन—घर। बिसारे—भुला दिए।

भावार्थ—सुन्दर साँवले, कमल पत्र सदृश नेत्र वाले, ललित त्रिभंगी, प्राण-प्रिय भगवान् के उन चरण कमलों की वन्दना करता हूँ, जो चरण कमल सदा शिव के परम धन हैं, लक्ष्मी जी जिन्हें कभी अपने हृदय से दूर नहीं करती, तथा जिन चरण-कमलों को पिता के भय से भयभीत प्रह्लाद जी ने मन, वचन और कर्म से सँभाला—ध्यान किया, जिन चरण-कमलों को स्पर्श करने वाली, पवित्र-सलिला गंगा जी के, दर्शन मात्र से ही पाप कट जाते हैं। जिन चरण-कमलों के स्पर्श से अहल्या, बलि, नृग और व्याध वाल्मीकि आदि तर गए, जो पद-कमल वृन्दावन में विहार करते हैं, जिन चरणों को शेषनाग जी अपने सिर पर धारण करते हैं, जिन चरणों से अनेक रिपु मारे गए, जिन पद-कमलों का स्पर्श करके व्रजयुवतियाँ सर्वस्व अर्पण कर अपने घर और पुत्रादि को भूल गईं, जिन चरण-कमलों का पांडव-दल पर विशेष अनुग्रह रहा है और जिनके लिए स्वयं भगवान ने दूत बन कर सब काम बनाया, सूरदास जी कहते हैं कि वही चरण-कमल हमारे तीनों प्रकार के—दैहिक, मानसिक और आत्मिक—ताप दूर करें ॥३६॥

३७. हरिजू तुमते कहा न होई—

भावार्थ—हे प्रभो! आप से क्या नहीं हो सकता? आपने

दीन-हीन सुदामा को इन्द्र के समान बना दिया और पांडवों के हित के लिए कौरवों के दल का नाश कर दिया। अजामिल पापी और कुब्जा दासी के कलयुग के सब पापों को धो दिया। आप की दया से गूँगा बोलने लगता है, पंगु पर्वत को लाँघ जाता है और अन्धा संसार में दृष्टिवान बन जाता है। हे प्रभो! जब ब्राह्मण ने आपकी शरण में आकर पुकार की तो आपने उसके मृतक पुत्र को जीवित कर दिया। सूरदास जी कहते हैं कि इसीलिए तमाम आशाओं को पूर्ण करने वाले भगवान् का सब कोई स्मरण करते हैं।

३८. अब के राखि लेहु भगवान--

शब्दार्थ--सचान—बाज। दुवौ भाँति—दोनों भाँति। पारधि—शिकारी, व्याध। शर—बाण।

भावार्थ—हे प्रभो! इस बार तो हमारी अवश्य रक्षा करो। हम संसार-रूपी वृक्ष की डाल पर बैठे हैं। नीचे कालरूपी व्याध धनुषबाण साधे खड़ा है। उसके डर से हम भागना चाहते हैं पर क्या देखते हैं कि ऊपर मृत्यु-रूपी बाज मँडरा रहा है। अब दोनों ओर से संकट में पड़े हैं। इस समय हमें कौन बचा सकता है? हे प्रभो, आप धन्य हैं! आपके स्मरण करते ही व्याध को सर्प डस गया और उसके धनुष से बाण छूट कर बाज के जा लगा। हे कृपानिधान! आपकी जय हो, आपकी दया से हमारी दोनों ओर की फाँसी कट गई ॥३८॥

३९. हृदय की कबहुँ न जरन घटी—

शब्दार्थ—जरन—जलन। बिथा—पीड़ा। ग्राम गटी—समुदाय। आरभटी—कामादि वासनाएँ। बदन--मुख। लटी—लंपटता पूर्ण बातें,

बुराई। जटी—जड़ित, जड़ी हुई। मूड़चढ़ी—सिर चढ़ी। मीचति—मृत्यु। श्वान—कुत्ता। पातर—पत्तल। ठटी—समुदाय।

भावार्थ—हृदय की जलन कभी दूर नहीं हुई। बिना भगवान् के यह तन की जलन कैसे दूर हो सकती है? इन्द्रिय समुदाय अपनी इच्छानुसार मन को इधर-उधर खींचता है और मैं भी नेत्रों पर पट्टी बाँधे कपट के लिए उधर ही चल देता हूँ जहाँ कि इन्द्रियाँ खींचे लिए जाती हैं। यह मन झूठा है, यह काया झूठी है तथा ये विषय-वासनाएँ भी सब झूठी हैं और झूठों का मुख देखकर मैं लंपटतापूर्ण झूठी बातें बनाता हूँ। दुःख के जंजाल में जकड़ी हुई यह काया दिन दिन क्षीण होती जा रही है। नाना प्रकार की चिन्ताओं से घिरे रहने के कारण, भूख नहीं लगती, उसकी विस्मृति ही हो गई तथा नींद उचट गई है। मैं लंपट माया रस में ऐसा निमग्न हो गया हूँ कि मुझ हठी को कुछ भी भला बुरा समझ में नहीं आता है। इतने पर मृत्यु रूपी नटिनी सिर पर चढ़ कर नाच रही है। जिस प्रकार जीभ के स्वाद के लिए कुत्ता पत्तल खींचता है और तृष्णा-वश चातक-समुदाय पानी पानी रटता है, उसी प्रकार मैं भी तृष्णा और स्वाद में भ्रम रहा हूँ। सूरदास जी कहते हैं कि भगवान् ने जब दया के समुद्र से सींचा तभी भक्त की जलन दूर हुई॥३९॥

४०. अब नाथ मोहिं उधारि—

शब्दार्थ—मग—रास्ता (मूल पुस्तक में 'भग' के स्थान पर 'मग' चाहिए)। उधारि—उद्धार कीजिए। भव अम्बुनिधि—संसार रूपी समुद्र। ग्राह—मगर। अनंग—कामदेव। मीन—मछलियाँ। मोट—गठरी। अघ—पाप। सिवार—शैवाल, पानी की घास। चितवन देत—देखने देते हैं। कूल—तीर, तट, किनारा।

भावार्थ—हे प्रभो ! अब की बार मेरा उद्धार कीजिए। कृपा-सिन्धु भगवान् ! इस संसार-रूपी समुद्र से पार होने का मुझे कोई मार्ग नहीं दीखता। इस संसार-सागर में माया का अति गहरा जल भरा हुआ है जो लोभ की तरंगों से तरंगित हो रहा है। कामदेव-रूपी मगर मुझे अथाह जल में खींचे लिये जा रहा है। इन्द्रिय-रूपी मछलियाँ अत्यन्त पीड़ा पहुँचा रही हैं। साथ ही मेरे सिर पर पापों का भारी बोझ रक्खा हुआ है। इस संसार-सागर में मोह-रूपी शैवाल (काई) इतना अधिक है कि उसमें पैर फँस जाते हैं, कहीं भी पैर रखने को इधर उधर स्थान नहीं मिलता; काम-क्रोधादि सहित तृष्णा-रूपी वायु झोंके दे रही है। स्त्री-पुत्रादि का मोह पाप के नाम-रूपी नौका की ओर देखने नहीं देता है अर्थात् स्त्री-पुत्रादि के मोह में पड़ कर कभी भी आप का नाम स्मरण नहीं करता हूँ। हे दयानिधि ! मैं इस संसार-रूपी समुद्र में व्याकुल और थकित हो रहा हूँ, इसलिए हे प्रभो, मेरा हाथ पकड़ कर और संसार सागर से मेरा उद्धार कर, मुझे व्रज के तट पर पहुँचा दीजिए ॥४०॥

४१. माधव जू मन हठि कठिन पर्‍यो—

शब्दार्थ—सेंवर—सेमल का वृक्ष। भेव—भेद। कुचील—मैला। मधुप—भौंरा, भ्रमर। भान—सूर्य, ज्ञान।

भावार्थ—हे प्रभो ! यह हठी मन बड़ा कठोर हो गया है। यद्यपि यह शरीर को सब प्रकार से दुख से भरा पाता है तथापि रात-दिन तृष्णातुर होकर दशों दिशाओं में भ्रमता फिरता है। जिस प्रकार तोता सेमर के फूल को देख कर बिना चोंच मारे नहीं जाता; चाहे उसके हाथ कुछ भी नहीं लगता है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य युग-युगों से जन्म-मृत्यु, संयोग-वियोग के सब भेदों को समझते

हुए भी इस संसार-रूपी सेमर के फूल पर तोते की भाँति भूल रहा है। जिस प्रकार उल्लू अपने ही दोष से सूर्य के अस्तित्व को नहीं मानता है, उसी प्रकार हम अपने ही दोष से आपके प्रभुत्व को नहीं मानते; यह हमारा स्वभाव सा हो गया है। मैं बड़ा कुचील, मूर्ख और अज्ञानी हूँ और हे भगवन्, आप सब प्रकार से दयालु हैं, संसार इस को जानता है। जिस प्रकार भ्रमर रात्रि के कमल कोष में बन्द हो जाता है और प्रातः सूर्य के उदय होने पर उससे छुटकारा पा सकता है, सूरदास जी कहते हैं कि मैं उसी तरह अज्ञान अन्धकार से घिरा हुआ हूँ। हे प्रभो, इससे मुक्त होने के लिए ज्ञान-रूपी सूर्य को उदय कीजिए, जिससे अज्ञान से मेरा छुटकारा हो ॥४१॥

४२. आछो गात अकारथ गारयो—

शब्दार्थ—अकारथ—व्यर्थ। गारयो—गला दिया, बरबाद कर दिया, नष्ट कर दिया। चारयो—चारों आँखें, दो चर्म-चक्षु और दो ज्ञान-चक्षु। दई—भाग्य, दैव।

भावार्थ—हे मन, तूने सुंदर शरीर को व्यर्थ ही नष्ट कर दिया। तूने कमल-नेत्र भगवान् की भक्ति नहीं की और कई जन्म यों ही खो दिए या कई जन्म तू जुआ की तरह हार गया। रात-दिन विषय-भोग में लगे रहने से तेरी चारों ही—दो बाहरी और दो भीतरी—आँखें फूट गई हैं। अब दुर्भाग्य की मार पड़ने से, दुःखी होकर, तू पश्चात्ताप करने लगा है। विश्वास रख, कामी, दुष्ट, मलिन और कुरूपों का भगवान् के सिवाय कोई उद्धार करने वाला नहीं है। आज तक, भगवान् के सिवाय उनका किसने उद्धार किया है ? किसी ने भी नहीं। इसी लिए तो दयालु ऋषि मुनि कहते हैं कि उस ऐसे पतित-उद्धारक परमात्मा को

हे सूरदास तूने क्यों भुला दिया है ? तू उसका स्मरण क्यों नहीं करता ? ॥४२॥

४३. माधव जू मन सबही विधि पोच—

शब्दार्थ—पोच—नीच। निरंकुश—स्वेच्छाचारी, मनमानी करने वाला। तिमिर—अन्धकार। वृषभ—बैल। भरम्यो—घूमता है। सारंगपानि—श्री विष्णु। गीध्यो—लुब्ध हुआ। हेम—सोना। तस्कर—चोर। फन्द—जाल। गुंजा—घुँघुची, रत्ती। शुक—तोता। तूल—रुई। कूप—कुआँ। विरद—बाना, यश।

भावार्थ—हे प्रभो! मन सब प्रकार से नीच और क्षुद्र है। यह स्वेच्छाचारी मस्त हाथी की तरह चिन्ता और सोच से दूर रहता है। अपनी भलाई-बुराई का कुछ भी विचार नहीं करता है। यह महामूढ़ मन अज्ञानान्धकार में निमग्न होने ही में सुख मानता है। तेली के बैल की तरह तृष्णा में घूमता रहता है, परन्तु बैठ कर भगवान् का भजन नहीं करता है। यह अति आतुर मतिमंद मन चोर की तरह सोने में आसक्त रहता है। जिस प्रकार मछलियाँ जिह्वा स्वाद पर आसक्त होकर फंदे को नहीं देखतीं उसी प्रकार यह मन भी इन्द्रिय स्वाद पर लुब्ध होकर आने वाले संकट को नहीं देखता है। जैसे पतंग ज्वाला से प्रीति प्रकट करने को उसके पास जाता और जल कर मर जाता है, वैसे ही यह मन सौन्दर्य की ज्वाला पर पतंग की तरह मर रहा है। जिस प्रकार बंदर जाड़े से मरता हुआ घुंघुचियों को अंगारे समझ कर उन्हें तापने के लिए इकट्ठा करता है परन्तु उनसे उसका शीत दूर नहीं होता, उसी प्रकार यह मूर्ख मन विषय वासनाओं को आनन्द की मृगतृष्णा के कारण छोड़ना नहीं चाहता है। जिस प्रकार तोता सुन्दर रंग वाले सेमर के फूल को देख कर उसे कोई सुंदर फल

जान कर खाना चाहता है, उसकी ढोंढी पर चोंच मारता है, ढोंढी फूट जाती है और उसकी रुई उड़ जाती है, बेचारे तोते के हाथ कुछ नहीं आता है वह पश्चात्ताप करके उड़ जाता है, ठीक उसी प्रकार मन भी इस संसार-रूपी सेमर के फूल पर मोहित होता है, उसे सुखदायी समझ कर उसका सेवन करता है—सांसारिक कर्मों में लिप्त होता है। परन्तु अन्त में तोते की तरह उसके हाथ कुछ नहीं लगता, उलटा इस दुःख-पूर्ण संसार-कूप में गिर पड़ता है, अर्थात् अपने को जन्म-मृत्यु के चक्कर में डाल देता है। हे प्रभो, इस मुख से मैं इस अज्ञानी मन के किये हुए कर्मों का कहाँ तक वर्णन करूँ ? हे प्रभो, मैं पतित हूँ और आप पतित-उद्धारक हैं, इसलिए अब आपको अपने विरद की लज्जा होनी चाहिए। पतित को पाकर उसका उद्धार न करे, वह पतित-उद्धारक कैसा ? ॥४३॥

४४. मेरो मन मतिहीन गुसाईं—

शब्दार्थ—भजन—बरतन, पात्र। सदन—घर। कौर—ग्रास।

भावार्थ—हे प्रभो, यह मेरा मन बड़ा ही मूर्ख है। देखो न, सुखनिधि भगवान् के चरण-कमलों को छोड़ कर कुत्ते की तरह व्यर्थ परिश्रम करके मरता है। जिस प्रकार कुत्ता सूने घर में प्रवेश कर, लालच के मारे प्रत्येक बरतन को टटोलता है परन्तु कुछ नहीं पाता, लालच के कारण उसके प्राणों की तृप्ति नहीं होती है, वह इधर-उधर जहाँ कहीं भी जाता है सदा भय से शंकित रहता है, लाठी और जूते की मार का भय बना रहता है। देखो, एक एक ग्रास के लिए मूर्ख कितना अपमान और कितनी मार सहता है! ठीक उसी प्रकार इस मूर्ख मन का भी व्यर्थ प्रयास है; हे प्रभो,

आप सर्वज्ञ हैं, सब प्रकार से पूर्ण हैं और तमाम लोक के स्वामी हैं। ऐसे प्रभु को छोड़ कर यह महा मूर्ख सूरदास तृष्णा के साथ भटकता फिरता है ॥ ४४ ॥

४५. करुणामय तेरी गति लखि न परै—

शब्दार्थ—असुर—राक्षस। नरहरि—नृसिंह। भानुसुत—कर्ण। वैरोचन सुत—राजा बलि। अविगत गत—जिस की गति का पता न लगे। गणिका—वेश्या।

भावार्थ—हे प्रभो, तेरी गति का पता नहीं चलता। न जाने तेरी गति के अनुसार कौन धर्म है, कौन अधर्म है, कौन करणीय है, और कौन अकरणीय है, या जिसे लोग धर्म कहते हैं वही अधर्म है, कुछ पता नहीं चलता। बताओ न, जय-विजय ने क्या पाप कर्म किया था जो आप ने ब्रह्मर्षि नारद द्वारा इन्हें शाप दिला कर, असुर योनि में गिरा कर, उनका धर्म छेदन करवाया। पिता के वचनों का खंडन करने वाले, अविनीत, पापी प्रह्लाद का आपने उद्धार कर दिया। उसके लिए खंभ से प्रकट हुए और हिरण्यकशिपु को मार कर उसे सदा के लिए निर्भय कर दिया। बड़ा भारी दानी कर्ण आपका विरोधी कहलाया पर वेद-विरुद्ध जन्म और कर्म वाले पांडव, हे प्रभो, तेरे मन को अच्छे लगे। हे प्रभो, बतलाइए भला, यह कौन सा धर्म है! वेद के निर्मल विधान से यज्ञ करने वाले राजा बलि को तो आपने छल कर पाताल भेज दिया और ब्राह्मण-कुल में महापतित तथा विषयी अजामिल जो वेश्या से प्रेम करता था, जिसने मरते समय अपने पुत्र नारायण का नाम लिया था, उसे आपने सीधा बैकुण्ठ भेज दिया। इधर आपने महा-पतिव्रता जलंधर की स्त्री को पातिव्रत-धर्म से गिरा दिया, उसे धर्मच्युत कर दिया पर दुष्ट व्यभिचारिणी

अधम वेश्या को, जो अपने तोते को राम राम पढ़ाती थी, तोता पढ़ाते ही तार दिया! मुक्त होने के लिए योगी बड़ा भारी परिश्रम करते हैं, योगाभ्यास करते हैं, तो भी मुक्त नहीं होने पाते; परन्तु राक्षस विरोध करने से ही मुक्त हो जाते हैं। इसलिए करुणामय प्रभो, तेरी अनिर्वचनीय गति का वर्णन करना सूरदास के लिए कठिन हैं। वह तुझे क्या कह कर गावे। न्यायी कहे या अन्यायी कुछ भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि दोनों ओर ही विपरीत उदाहरण विद्यमान हैं ॥४५॥

४६. अवगति गति जानी न परै—

शब्दार्थ—अविगत—न जानी जा सके, अनिर्वचनीय। गति—लीला। वच—वाणी। अगोचर—जो इन्द्रियों से न जानी जा सके। संचरै—जान सके। पौरुष—पुरुषार्थ। केहरि—सिंह। अजगर—एक बड़ा सर्प, जो एक स्थान में ही पड़ा रहता है। रीते—खाली। ढारै—उँडेल देता है। बूड़ै—डूबता है। पाहन—पत्थर। विकसाही—खिलते हैं। रंक—दरिद्र, गरीब। पतित—नीच, पापी। तनिक में जरासी—देर में। ढरै—कृपा करें, प्रसन्न हो जायँ।

भावार्थ—भगवान् की अनिर्वचनीय लीला समझ में नहीं आती। वह मन, वाणी और इन्द्रियों से अगम्य है, बुद्धि उसे किस प्रकार समझ सकती है? देखो न, अत्यन्त बल पराक्रम वाला सिंह तो भूखा मरता है पर कुछ उद्योग परिश्रम न करने वाला अजगर पड़े-पड़े ही पेट भर लेता है। परमात्मा जो चाहे सो कर सकता है। यदि उसकी इच्छा हो तो वह रिक्त को भर सकता है, भरे हुए को उँडेल सकता है और खाली को फिर से चाहे तो भर सकता है। वह सर्व शक्तिमान है, उस की इच्छा से कभी तो तिनका पानी में डूबता है और कभी बड़े

बड़े शिलाखंड तिनके की भाँति पानी में तैर जाते हैं। वह चाहे तो गागर में समुद्र भर दे, चाहे चारों ओर जल जल प्रवाहित कर दे। उसकी लीला से पत्थरों के बीच में कमल खिल सकते हैं और पानी में आग जल सकती है। उसकी लीला से राजा दरिद्र हो सकता और दरिद्र सिर पर छत्र धारण कर सकता है। सूरदास जी कहते हैं कि पतित का उद्धार होते क्या देर लगे यदि परमात्मा उस पर थोड़ी भी कृपा करें। ॥४६॥

४७. अपनी भक्ति देहु भगवान—

शब्दार्थ—नाहिनै—नहीं है। रुचि—इच्छा। आन—दूसरी। गिरिते—पर्वत से। सुकर—स्वकर, अपने हाथ। ईश—शिवजी। सिंहशावक—सिंह का बच्चा। अनीति—अत्याचार। किंकर—सेवक। यूथ—समुदाय। टारे टरत न—हटाये नहीं हटता। नेक—ज़रा। कूपनि—कुओं। माचल—मचलने वाला, हठी, पक्का। हौं—मैं। काँचा—कच्चा। रिसाय—गुस्साकर। डारिहौं कढराई—घसीट कर फेंकवा दोगे।

भावार्थ—हे प्रभो! मुझे अपनी भक्ति प्रदान कीजिए। आप चाहे मुझे करोड़ों लालच दें, किन्तु मुझे भक्ति के सिवाय दूसरी चीज़ की इच्छा नहीं है। मुझे ज्वाला में जलते हुए, गिरि से गिरते हुए एवं अपने हाथों अपना शीश काटते हुए देखकर के स्वयं भगवान शंकर सकुचते थे पर वे भी मुझे अपने कामों से विरत नहीं कर पाते थे। (इसके अतिरिक्त) कभी कभी वासनात्मक बुद्धि वश कुपित होकर मृगया में पशुओं का घात करने लगता हूँ, उनको मारने लगता हूँ, तो मेरे भय से सिंहों के बच्चे अपनी माँद छोड़कर निकल भागते हैं। यही क्यों मेरे प्रयत्नों को देखकर स्वयं देवराज इन्द्र भयभीत हो उठते हैं। हे भगवान् जिस दिन से मैंने जन्म लिया है तब से मेरी यही रीति रही है।

मैंने हठकर सदा विषय-वासना का विष ही सेवन किया है, अत्याचार करने से मैं कभी भी बाज नहीं आया हूँ। मुझे हटाने में यम-दूत भी थक गये परन्तु मैं ज़रा भी नहीं हटा। मैं अनेक बार नरक के कुओं में जा गिरा। मैं मार खाने में बड़ा पक्का हूँ। मुझे किसी प्रकार का संकोच भी नहीं है। हे प्रभो, अब तो मैंने प्रण किया हुआ है कि आपके ही दरवाजे पर पड़ा रहूँगा। अतः आपको भी अपने प्रण (पतित उद्धार करने का प्रण) की लज्जा होनी चाहिए। हे कृपानिधि, मैं कच्चा नहीं हूँ जो आप के मारने धमकाने से टल जाऊँ। ऐसी दशा में आप क्रोध कर क्या कर लेंगे? आपका क्रोध कुछ काम न देगा। सूरदास तो तब भी आपका द्वार नहीं छोड़ेगा जब आप घसीट कर उसे फिंकवा देंगे ॥४७॥

४८. जन के उपजत दुख किन काटत—

शब्दार्थ—जनके—भक्त के। उपजत—पैदा होते ही। किन काटत—क्यों नहीं काट डालते। खेतहर—कृषक, किसान। उपाटत—उखाड़ देता है। मीन—मछली। किलकिला—मछली खाने वाली चिड़िया। डाटत—डाँटते रहो, रोके रहो। अघसिंधु—पाप समुद्र। खार—खड्ड, गढ़ा।

भावार्थ—हे प्रभो! भक्त के दुःख को जन्मते ही आप क्यों नहीं काट डालते? जैसे किसान लोग आषाढ़ के पहले के उगे हुए पौदों को देखते ही उखाड़ फेंकते हैं। जैसे किलकिला नामक पक्षी मछली को देखते ही उसे दबोचता है, हे मेरे स्वामी, आप भी (भक्तों की भीर को) उसी प्रकार भयभीत करते रहो। अन्यथा बाद में पाप-समुद्र का वेग भयङ्कर होता जाता है इस

लिए उचित यही है कि उसे उसी समय पाट दिया जाय जब कि वह एक साधारण पोखर या गढ़े के रूप में हो ॥४८॥

४६. कीजै प्रभु अपने बिरद की लाज—

शब्दार्थ—बिरद—बाना, यश। श्रवणनि—कानों से। खार—पोखर, गढ़ा। गरीब नेवाज—दीन दयालु।

भावार्थ—हे प्रभो, अपने पतित-उधारन बाने की लज्जा रखिए। यह बहुत ठीक है, कि मैं महानीच हूँ और कभी भी आपके काम नहीं आया। थोड़ा भी आपका नाम स्मरण नहीं किया। मैं प्रबल माया-वश घर, स्त्री और धनादि के फंदे में बुरी तरह से जकड़ा हुआ हूँ। देखता हूँ, सुनता हूँ, और सब कुछ जानता हूँ तो भी मैं बाज नहीं आता। इन बन्धनों से मुक्त नहीं होता। कहा जाता है कि आपने बहुत से पापियों का उद्धार किया है और यह मधुर ध्वनि मेरे कानों में भी पड़ी है। मैं भी संसार-समुद्र से पार होने के लिए जहाज़ में चढ़ना चाहता हूँ परन्तु उतराई देने में असमर्थ हूँ। हे महाराज व्रजराज श्रीकृष्ण! सूरदास को आप पार उतार दीजिए। मैं आप से कोई नया काम करने को नहीं कहता (यह तो आपका दैनिक कर्म है) क्योंकि आप सदा दीनों पर दया करने वाले हैं ॥४६॥

५०. महाप्रभु तुम्हें विरद की लाज—

शब्दार्थ—सँवारत काज—काम बनाता है। ग्राह—मगर। राजा—युधिष्ठिर। छर—धोखा। छरद—धोखा देने वाला।

भावार्थ—हे भगवन्, आपको अपने बाने की लज्जा सदा ही रही है। हे कृपानिधि महादानी प्रभो! आपने सदा भक्तों का काम बनाया है। जब मगर ने हाथी की टाँग पकड़ ली और उसने आपको पुकारा तब आप अपने वाहन गरुड़ को छोड़कर तथा

अति आतुर होकर उसकी सहायता को चल पड़े। हाथ में चक्र लेकर आपने मगर को मार कर हाथी को विपत्ति से छुड़वा दिया। रात-रात में ही जब दुर्वासा ऋषि दस हजार शिष्यों को लेकर कौरवों का काम बनाने के लिए, राजा युधिष्ठिर के अतिथि हुए; ऐसे कुसमय में जब द्रौपदी भोजन कर चुकी थी उनका आतिथ्य-सत्कार करना और उन्हें भोजन खिलाना कठिन जानकर युधिष्ठिर बहुत घबड़ाए कि कहीं ऋषि नाराज़ होकर शाप न दे दें; उस समय तत्काल आपने प्रकट होकर और एक शाक के पत्ते से सब को तृप्त कर युधिष्ठिर के प्राणों को व्याकुलता से बचाया। हिरण्यकश्यप ने जब आपके भक्त प्रह्लाद को बहुत दुःख दिया तब आप नृसिंह रूप धारण किए बिना न रह सके। आप ने हाथ से पकड़ कर उस दानव को पछाड़ दिया और आपने भक्त को विपत्ति से छुड़ा दिया। दुष्ट दुःशासन जब केश पकड़ कर नग्न करने के विचार से द्रौपदी को राजसभा में लाया; तब द्रौपदी ने आपका स्मरण किया। आपने तुरन्त ही उसके वस्त्र-प्रवाह को बढ़ाकर उसकी लज्जा को बचा दिया। मगधाधिप जरासन्ध अनेक राजाओं को जीत कर जब अभिमान में चूर हो गया तब आपने युद्ध में उसे हराया और मार डाला और समस्त राजाओं को उसके बन्दीगृह से मुक्त कर दिया। हे करुणामय, आपकी महिमा बड़ी अगाध है तथा भक्तों के लिए हितकारी है। हे कृष्ण, अब कृपा करके सूरदास को भी दर्शन देकर कृतार्थ कीजिए ॥५०॥

५१. शरण आये की लाज उर धरिए—

शब्दार्थ—उर—हृदय। सध्यौ नहीं—साधना नहीं की। त्रास—भय। तकि—देखी है।

भावार्थ—हे प्रभो, अब शरण में आए हुए की लज्जा की रक्षा

कीजिए। मैंने धर्म, शील तप तथा व्रत आदि की कुछ भी साधना नहीं की; मैं किस मुख से आपकी प्रार्थना करूँ। मैं आप से कुछ प्रार्थना करने की इच्छा करता हूँ परन्तु फिर अपने कर्मों पर विचार कर बड़ा भयभीत हो जाता हूँ और मन की बात मन ही में रह जाती है आपसे कहते नहीं बनती। परन्तु जन्म से ही मैं एक आशा पर अटका रहा कि वेदों ने आपको 'पतित पावन विरद' वाला कहकर गाया है। आप पतित पावन हैं और मैं पतित हूँ इससे आप मेरा उद्धार अवश्य ही कर देंगे। इससे मुझे कोई चिन्ता न रही। मैंने विषय-रूपी विष को खाने में कभी तृप्ति नहीं मानी, विषयों को भोगते हुए मुझे कभी संतोष नहीं हुआ और जिस विषय-वासना को छिप कर धोखा देने वाली जान कर सब सन्तों ने छोड़ दिया था, मुझ मूर्ख ने उससे प्रीति लगायी। जितने भी पाप मार्ग हैं सब का ही मैंने अवलम्बन किया। जहाँ तक मुझे याद है कोई भी पाप-कर्म मुझ से अछूता नहीं बचा है। हे प्रभो! मैं अवगुणों से भरा हुआ आपके दरवाजे पर आ पड़ा हूँ और एक मात्र आपकी शरण तक कर यहाँ आया हूँ ॥५१॥

५२. प्रभु मेरे गुन अवगुन न विचारो--

शब्दार्थ—रविसुत—यम। त्रास—भय। निवारो—दूर करो। श्वान—कुत्ता। गिरिपति—भगवान शंकर। मसि—स्याही।

भावार्थ—हे प्रभो! मेरे अवगुणों पर विचार न कीजिए। सिर्फ शरण में आए का विचार करके मुझे यमराज के भय से बचाइए। मैंने योग, यज्ञ, जप तपादि कुछ भी नहीं किया और नहीं पवित्र वेद पढ़ा। कुत्ते को जिस प्रकार जूठे में स्वाद आता है उसी प्रकार मैं विषय रस में सदा लुब्ध रहा, उसी में मुझे आनन्द का अनुभव होता रहा; उसके सिवाय मैंने दूसरी ओर चित्त ही नहीं दिया।

जिस जिस योनि में मैंने कर्मवश जन्म लिया है वहाँ-वहाँ मैंने यही कुछ किया, विषय रस में ही आसक्त रहा। काम, क्रोध मद और लोभादि में फँस कर मैं तीव्र विषय-रूपी विष का पान करता रहा। यदि शिवजी समुद्र में स्याही घोलकर, कल्प वृक्ष की लेखनी अपने हाथ में लेकर लिखने बैठें और सारी पृथ्वी को कागज बना कर उस पर मेरे किए हुए पापों को लिख डालें, तो भी मेरे पापों का ठीक ठीक लेखा न हो सकेगा। मैं बड़ा कामी, कुटिल, कुचक्री कुरूप, पापी और महा अज्ञानी हूँ और हे प्रभो, आपके समान कोई ऐसा दयालु नज़र नहीं आता जिससे दीन होकर मैं प्रार्थना करूँ। इसलिए हे सर्वस्व, हे अनन्त, हे कृपालु, हे अविनाशी, (जिसका कभी नाश न हो) हे आनन्द रूप प्रभो ! मुझ पर दया कीजिए। मैंने आपके भजन का प्रभाव नहीं जाना। मैं अज्ञान के बन्धन में पड़ा रहा। हे स्वामी, आप घट घट की जानने वाले हैं, सर्वज्ञ हैं, सब प्रकार से समर्थ हैं, अशरण को शरण देने वाले हैं। अतएव, सूरदास, जो मोहरूपी सागर में डूबा जा रहा है, कृपया उसे अपने हाथ का सहारा देकर बचा लीजिए ॥५२॥

५३. तुम हरि साँकरे के साथी—

शब्दार्थ—साँकरे—संकट। साखी—साक्षी। द्रुपदतनया—द्रौपदी माँझ—मध्य। परपीरक—दूसरे को पीड़ा पहुँचाने वाला। हाथी—हाथ का सहारा।

भावार्थ—हे प्रभो, आप संकट के साथी हैं। परम व्याकुल हाथी की ज्यों ही आपने पुकार सुनी त्यों ही आप उसे दुःख से छुड़ाने के लिए दौड़ पड़े। गर्भ में आपने परीक्षित की रक्षा की, वेद उपनिषद जिसके साक्षी हैं। द्रौपदी का चीर बढ़ा कर

सभा में उसकी लज्जा बचाई। राज-रमणियों ने अधीर होकर आप का आह्वान किया और अपने पुत्रों को आपकी सहायता की आशा दिलाकर धीरज बँधाया। उनकी कातर प्रार्थना से द्रवित होकर आपने दूसरों को पीड़ा देने वाले जरासन्ध को मार कर समस्त राजाओं को उसके बन्धन से मुक्त किया। प्रभो, आप ऐसे दयालु हैं। राजा के विश्वास करने पर जब कोकिल ने कपट स्वरूप धारण कर लिया और राजा पर विपत्ति पड़ी समझी, तब आप ही प्रकट हुए और शत्रु को मार कर सबको सुख दिया। हे प्रभो, आपकी ऐसी गुणावली का कहाँ तक वर्णन करूँ आप के गुणों को लिखने में भी पार नहीं पा सकता हूँ। हे कृपासिंधु, उन अपने भक्तों—हाथी, द्रौपदी इत्यादि—की भाँति मेरी भी लज्जा बचाइए। सूरदास जी कहते हैं कि हे प्रभो, आपने अपनी प्रतिज्ञा सदा ही इस प्रकार निबाही है। आप सदा संकट के साथी रहे हैं। जिस तरह समझें मुझ दीन को वैसे ही सहायता करें। क्योंकि आप ही सबके हाथों के सहारे हैं, सबके आश्रय स्वरूप हैं।।५३।।

५४. तुम बिन साँकरे को काको--

शब्दार्थ--साँकरे—तंग समय, आपत्तिकाल, दुःख, संकट। को काको---कौन किसका है। कुंजर—हाथी। गाढ़ परी--विपत्ति पड़ी। बंदि बिदा कर--क़ैदियों को छोड़ दिया। फाँको--फाँक, टुकड़ा।

भावार्थ—हे प्रभो, आपके सिवाय विपत्ति में कौन किसका है? हे दीनदयालु हे देव श्रेष्ठ, आपके सिवाय दूसरा कौन है जिसका विपत्ति में नाम लें! अर्थात् विपत्ति के एकमात्र साथी आप ही हैं। हे प्रभो, आपने उत्तरा की पीड़ा तथा गर्भ में पड़े हुए विवश परीक्षित की रक्षा की और इस प्रकार दोनों की यन्त्रणा को मिटा दिया। जब हाथी ने निर्बल होकर पुकारा कि हे

करुणामय मेरी रक्षा करो' तब आपने तुरन्त जाकर उसके बन्धन को काट दिया। दुर्वासा ऋषि राजा अंबरीष को शाप देने गया था परन्तु उलटी उसी पर विपत्ति पड़ी। सुदर्शनचक्र से वह जलने लगा। अन्त में हे प्रभो, आपने क्षमा माँगने के लिए उसे राजा अंबरीष के पास ही भेजा। आपकी सहायता से ही पांडुपुत्र निर्भय होकर घूमते थे और उन्हें किसी का भी डर न था। हे प्रभो आपका चारों वेद और चतुरानन ब्रह्मा यश गाते हैं। आपने जरा-सन्ध के बल का मर्दन कर और उसके जोड़-सन्धिभाग को उधेड़ कर तथा चीर कर उसके दो फाँक कर दिए और तमाम बन्दियों को, चाहे वे राजा या रंक कोई भी रहे हों सबको, जेलखाने से छुड़ा कर बिदा कर दिया। आपने सभा में द्रौपदी की लज्जा रक्खी जिस का गुण उसके पंचपति मानते थे। हे विश्व के पालक, आपने उसे ऐसे करोड़ों वस्त्रों की ओट में किया कि उसके शरीर का बाहर प्रतिबिम्ब भी न पड़ने पाया। विपत्ति पड़ने पर, आपने भीष्म पितामह के प्रण की रक्षा की और अर्जुन के रथ को हाँका। हे भक्तवत्सल, आपने अपने प्रण को तोड़कर तथा भक्त के प्रण को रखने के लिए रथ से उतर कर हाथ में सुदर्शनचक्र धारण किया। गोपीवल्लभ सूर के स्वामी श्रीकृष्ण दया के समुद्र हैं। हे प्रभो, जब प्रह्लाद के सामने बड़ी कठिन समस्या उपस्थित होगई थी तब आपने नृसिंह रूप धारण कर हिरण्यकश्यप को मार कर उसकी आपत्ति से रक्षा की। ॥५४॥

५५. तुम्हरी कृपा गुपाल गुसाईं--

शब्दार्थ—मगरज—रास्ते की धूल। महाशठ—महामूर्ख। खरि—खड़िया, चाक।

भावार्थ—हे गोपाल, हे स्वामी! मैं अपने अज्ञान के कारण

आपकी दया को नहीं जानता। जिस प्रकार उल्लू पक्षी को अपने ही नेत्र-दोष से सूर्य की किरणें नहीं दिखाई देतीं उसी प्रकार अपनी ही अज्ञानता से मुझे आपकी महान कृपा नहीं सूझती। हरि का नाम जो सब सुखों की खान है, उसके माहात्म्य की मुझे पहचान नहीं हुई। मैं तुच्छ विषय रस का लोभी महामूर्ख कौड़ी के लिए सारे मार्ग की धूल छानने वाला हूँ। हे प्रभो, आपका नाम जो शिव जी का एकमात्र धन है और सज्जनों का जो सर्वस्व है, जिसकी महिमा को वेद और पुराण बखानते हैं इतना सब कुछ जानते हुए भी यह महामूर्ख सूरदास आपके नाम रूपी अमूल्य नग के बदले विषय-रूपी खड़िया ले आया है ॥५५॥

५६. अपने जान में बहुत करी—

भावार्थ—हे प्रभो, अपने जानते, आपका कृपा-पात्र बनने के लिए मैंने बहुत कुछ किया। परन्तु किस प्रकार आपकी कृपा उपलब्ध होगी, यह कुछ मेरे समझ में नहीं आया। मैं आपके दर्शन के लिए दूर दूर गया, परन्तु मेरी समझ में नहीं आया कि आप सर्वव्यापक हैं। आप सब जगह ही मिल सकते हैं। मन, वचन कर्म और इन्द्रियों से न जानने योग्य आपकी मूर्ति को मैंने कभी नेत्रों में धारण नहीं किया। हे हरि, आप निर्गुण होते हुए भी सगुण और बिना रूप के होते हुए भी रूपवान् हैं। ऐसे प्रभु का नाम न लेने से मैंने अपरिमित अपराध किया है। हे कृपासिन्धो, सूरदास की सारी बिगड़ी को सुधार दीजिए और उसके अपराध को क्षमा कर दीजिए। ॥५६॥

५७. तुम गोपाल मोसों बहुत करी—

शब्दार्थ—न सरो—कुछ न बन पड़ा। पावक—अग्नि। जठर—पेट। कंचन—स्वर्ण।

भावार्थ—हे गोपाल, आपने मुझ पर बड़ी दया की। भगवान् का नाम स्मरण करने के लिए मुझे मनुष्य-शरीर प्रदान किया परन्तु मुझ पापी का उस से भी कुछ काम न चला। हे प्रभो, मैं जब गर्भ में अत्यन्त भयभीत नीचा मुँह किए हुए पड़ा था उस समय भी आपने मुझे नहीं भुलाया। उस समय आपने जठराग्नि से मुझे जलने नहीं दिया और कंचन के समान सुन्दर देह प्रदान की। मैंने संसार में जन्म लेकर बहुत सारे पाप किए और अन्त में मेरी सारी दशा बिगड़ गई। सूरदास जी कहते हैं कि हे प्रभो, मैं पतित हूँ और आप पतितोद्धारक हैं इस लिए अब आपको अपने विरद की लज्जा होनी चाहिए। आप को मेरा उद्धार कर देना चाहिए क्योंकि तभी तो आप पतित-उद्धारक कर सकेंगे ॥५७॥

५८. माधवजू जो जनते बिगरै—

शब्दार्थ—नहिं जीय धरै—ध्यान नहीं देते। जठर—पेट। निकसे—जन्म लेने पर। अंक—गोदी। मलय वृक्ष—चन्दन वृक्ष। कुठार—कुल्हाड़ा। कृषीवल—किसान। बिथुरै—बिखेरता है। द्विज—दाँत, ब्राह्मण, पक्षी, चन्द्रमा। रसना—जिह्वा। व्याल—सर्प।

भावार्थ—हे भगवन्, यदि भक्त से कुछ बिगड़ भी जाय तो भी आप कृपालु, करुणामय भगवान अपने मन में उसका कुछ भी ख्याल नहीं करते। जैसे बच्चा माँ के पेट में अनेक उपद्रव करता है फिर भी माँ उसको यत्न से रखती है और पैदा होने पर उसका पालन-पोषण करती तथा उसको प्यार से गोदी में लेती है। यदि कोई कुल्हाड़ा हाथ में लेकर चन्दन वृक्ष की जड़ को काटता है तो भी चन्दन अपनी स्वाभाविक सुगन्ध और शीतलता से काटने वाले शत्रु के शरीर के ताप को हर लेता है। जो

किसान हल लेकर जमीन को जोतता है और उस पर पानी तथा बीज बिखेर देता है; गर्मी सर्दी को सामने सहन करके पृथ्वी उसको भी सुफल कर देती है, अच्छा फल देती है। इसी प्रकार जीभ दाँतों से दब कर पीड़ित होने पर भी गुस्सा करके उनका क्या बिगाड़ करती है ? दाँतों द्वारा कट जाने पर भी वह उनके पास ही घूमती फिरती है। सूरदास जी कहते हैं कि हे कारणों के भी कारण, दयामय भगवान् , अपने भय से ही गरीब आदमी डरता है और वह कलिकाल--रूपी सर्प के मुँह में पड़ा हुआ आपकी शरण पाकर उससे मुक्त हो सकता है ॥५८॥

५६. दीनानाथ अब बार तुम्हारो—

शब्दार्थ—पलित केश—सफेद बाल। कल—चैन। विरोध्यो—रुक गया।

भावार्थ—हे दीनानाथ, अब की बार अपना पतितोद्धारक बाना विचार कर, मेरी बिगड़ी को सुधार दीजिए। मैंने बाल्यावस्था खेलने में खो दी, और युवावस्था विषय-रस में मस्त होकर बिता दी। वृद्धावस्था में जब परलोक का कुछ विचार हुआ इसी कारण दुःखित होकर आप से प्रार्थना कर रहा हूँ। इस अवस्था में मुझे पुत्रों ने छोड़ा, स्त्री ने छोड़ा, भाई ने छोड़ा यहाँ तक कि शरीर की त्वचा भी उससे जुदा हो गई है। कानों की सुनने की शक्ति नष्ट हो गई पैरों की गति थक गई, नेत्रों से जलधारा बहने लगी है। बाल सफेद होगए, कंठ में कफ रुक गया है, जिससे रात दिन चैन नहीं पड़ती। इतने पर भी माया और तृष्णा ये दोनों मेरा पिंड नहीं छोड़ती हैं, ये दोनों ही दुख देने वाली हैं। हे प्रभो, इस व्यथा को दूर करने में आपके सिवाय दूसरा कोई

समर्थ नहीं है ! सूरदास कहते हैं कि हे करुणासागर, यह व्यथा आप से दूर हो तो हो, अन्यथा किसी से कुछ होने का नहीं ॥५९॥

६०. पतित पावन जान शरण आयो—

शब्दार्थ—पतित पावन—पतितों को पवित्र करने वाला। उदधि—समुद्र। निगम—वेद। परश—स्पर्श। चित चेत—ध्यान दे।

भावार्थ—हे प्रभो, आपको पतित-पावन जान कर आप की शरण आया हूँ। संसार-रूपी समुद्र से पार होने के लिए आपके शुभ नाम रूपी नौका को वेदों ने अटल स्थान कह कर वर्णन किया है। गणिका (वेश्या), अजामिल, गीध और व्याध ने आप का नाम स्मरण कर तथा गौतम ऋषि की नारी अहल्या ने आपके चरण स्पर्श कर मोक्ष गति प्राप्त की है। अन्त काल में आपका आधा नाम लेने पर आपने हाथी को मगर के मुख से छुड़ा दिया। आपके नाम के प्रभाव से ही निर्बल प्रह्लाद बलवान् राक्षस हिरण्य-कश्यप के कष्टों से बच कर सुख ही भोगता रहा। आपके चरणों में चित्त लगने और शिर झुकाने से ही ध्रुव अटल पद को प्राप्त हो गया। हे प्रभो आपने पांडवों को विपत्ति से छुड़ाकर, अपनी परम सेविका द्रौपदी का चीर बढ़ा कर उसकी लज्जा बचाई। हे भक्तवत्सल, कृपानाथ, अशरण को शरण देने वाले, आप पृथ्वी के भार को हरण करने वाले हैं, यह आपका यश संसार में फैला हुआ है। सूरदास जी कहते हैं कि हे चेतन जीव ! स्वामी के उन चरणों में ध्यान दे जिनका ब्रह्मा, शिव और शुकादि ऋषि ध्यान लगाते और शेषनाग यश गाते हैं।

६१. श्रीनाथ शारंगधर कृपा कर दीन पर—

शब्दार्थ—श्रीनाथ—लक्ष्मीपति। शारंगधर—धनुषधारी। भव—संसार। त्रास ते—भय से। जलधर—बादल। अचल—पर्वत।

भावार्थ—हे प्रभो, लक्ष्मीपति ! मुझ दीन पर कृपा करके सांसारिक त्रास से डरे हुए मेरी रक्षा कीजिए। मैंने न आपका नाम जपा, न आप का स्मरण किया और न आपकी भक्ति ही की, सिर्फ शरण में आया हुआ विचार कर आपको मेरी रक्षा करनी चाहिए क्योंकि शरण में आये हुए को कोई नहीं त्यागता। अतएव आपको भी इसकी लज्जा होनी चाहिए। जिस प्रकार बादल छोटे बड़े या पर्वताकार अनेक रूप धारण करता है, उसी प्रकार मैंने जल और थल में अनेक रूप धारण किए हैं। त्रिविध कर्म (संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण-रूपी) मूशल, मुदगर और दण्ड से मार-मार कर यमदूत हार गये पर मैं कुकर्मों से बाज नहीं आया। हे प्रभो, जिस प्रकार आपने वृषभासुर, केशीदैत्य, मल्ल, धेनुक, पूतना, धोबी और चाणूर जैसे दुष्टों को तारा है, तथा गणिका और अजामिल का उद्धार किया है उसी प्रकार मेरा भी उद्धार कर दीजिए; मैं उन से किसी प्रकार घट नहीं हूँ। हे प्रभो, आपने फिर मुझे क्यों हृदय से भुला दिया है। सूरदास जी कहते हैं कि गणिका अजामिलादि की भाँति मेरा भी उद्धार क्यों नहीं करते, जब कि मैं उनके समान ही पापी हूँ। उन्हें तार कर अब मुझे क्यों भुला दिया है। ॥६१॥

६२. कबहूँ नाहीं गहर कियो—

शब्दार्थ—गहर—गहरु, विलम्ब, देरी। बियो—अन्य, दूसरा। अम्बर—वस्त्र, चीर। हियो—हृदय।

भावार्थ—स्मरण से सदा सुलभ होने वाले प्रभो ! आपने भक्तों को निर्भय करने में कभी भी देरी नहीं की। आपने गाय, गोपों और गोपियों के हितार्थ अपने करकमलों से गोवर्द्धन पर्वत धारण किया और अघासुर, अरिष्टासुर और केशी दैत्य को मारा,

काली नाग का मदचूर्ण किया, दावानल का पान किया, कंस को सवंश नष्ट किया, और जरासन्ध को मारा तथा आपने अपने गुरु सांदीपन के पुत्र को लाकर दिया। सभा-भवन में द्रौपदी की खींची जाती हुई साड़ी को आपने कभी समाप्त न होने वाली बना दिया। सूरदास जी कहते हैं कि हे श्याम, हे सर्वज्ञ, हे दयानिधि, हे करुणामय, हे सुकोमल हृदय वाले, प्रभो श्रीकृष्ण ! आपको छोड़ कर और अन्य किस की शरण में जाऊँ ? ॥६२॥

६३. ताते तुमरो भरोसो आवे—

शब्दार्थ—ताते—इसी से। खल—दुष्ट। गनिका—पिंगला नाम की वेश्या। मनसा—मन से। बपुरो—बेचारा, दीन। ग्राह—मगर। बकी—बक राक्षस की बहन, पूतना। घोष—ग्वालों की बस्ती। व्याध—शिकारी। वसन—वस्त्र। प्रवाह—धारा। सुतकुबेर—कुबेर के दो पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव जो नारद जी के शाप से यमलार्जुन नाम के वृक्ष हो गए थे।

भावार्थ—हे प्रभो, वेद और उपनिषद कहते हैं कि आप दीनों के स्वामी और पतितों को पवित्र करने वाले हैं इसी से आप पर विश्वास होता है। यदि कदाचित् आप पूछ बैठें कि बताओ मैंने कौन कौन से पापी तारे हैं तो हे प्रभो, मैं सप्रमाण उत्तर देता हूँ, सुनिए—गुरु सांदीपन के पुत्र को आप विष्णुलोक से ले आए और आपको कोई रोक न सका। पिंगला नामक वेश्या ने कौन से व्रत और नियम-संयम का पालन किया था, वह तोते को आप का नाम पढ़ाती थी। बेचारे हाथी ने ज्योंही हृदय से आपका स्मरण किया कि आपने तुरन्त उसे मगर के चंगुल से मुक्त कर उस ग्राह को भी मोक्ष प्रदान कर दिया। पूतना छल कर नन्द ग्राम में आई थी आपने उसको भी माता यशोदा को प्राप्त होने वाली

परमगति प्रदान कर दी। और वेद कहते हैं आपने वृषभासुर और व्याध को भी परमगति प्रदान की। दुष्ट दुर्योधन ने जब द्रौपदी को सभा में बुलवा कर उसे नग्न करने की आज्ञा दी थी, उस समय हे प्रभो आपके सिवाय दूसरा कौन था जो उसके वस्त्रों के प्रवाह को बढ़ा कर उसकी लज्जा को बचा सकता? इसी प्रकार कुबेर के पुत्रों को यमलार्जुन नामक वृक्षों के रूप में दुःखी जानकर उनकी मुक्ति के लिए आपने अपने आपको बंधवाया। भला, ऐसा और कौन स्वामी होगा जो अपने सेवक के लिए स्वयं दुःख उठावे। दुर्योधन ने पांडवों का बुरा विचार कर दुर्वासा से उस समय उसके घर जाने की प्रार्थना की जब कि पांडव और द्रौपदी सभी भोजन कर चुके थे। दुर्वासा ने दुर्योधन के आतिथ्य से प्रसन्न होकर वैसा ही किया। उस समय आपके स्मरण करने से वे दुर्वासा ऋषि जो अपने शिष्यों सहित स्नानार्थ नदी पर गए हुए थे, तृप्त हो गए। यह जान कर कि अब हमारे पेट तो ऐसे ही भर गए हैं अब पांडवों के यहाँ हम क्या भोजन करेंगे दुर्वासा ऋषि अपनी पूजा का सामान कुशा इत्यादि वहीं छोड़ कर वहाँ से भाग खड़े हुए। इसी प्रकार जब देवराज इन्द्र ने यज्ञ और पूजादि के न मिलने से क्रोधित होकर व्रज पर वर्षा की झड़ी लगा दी थी, उस समय हे प्रभो! आपने गोवर्द्धन पर्वत अपने हाथ में लेकर व्रजवासियों की सहायता की थी। ॥९३॥

९४. दीन को दयालु सुन्यौं अभयदान दाता—

शब्दार्थ—विरुदावली—गुणावली। तंदुल—चावल। काहे गर्वाता—क्या अभिमान करते हो।

भावार्थ—हे दीनों पर दया करने वाले प्रभो, सुना है कि आप अभय दान देने वाले हैं। आपकी गुणावली सत्य है, आप

संसार के वास्तविक माता-पिता हैं। व्याध, गीध और गणिका इनमें से कौन ज्ञानी था ? पर उनके स्मरण करते ही आप तुरंत चले आये यह त्रिभुवन में विख्यात है। जिस प्रभु ने दुष्ट केशी दैत्य और कंस को मुष्टि प्रहार से ही मार गिराया था, अपने भक्त ध्रुव को राज्य दिला देना उनके लिए कौन सी बड़ी बात थी; जिन्होंने चावल चबाने से ही सुदामा जी को तीन लोक का ऐश्वर्य दे दिया, जो एक तुलसी के पत्ते को चढ़ाने से ही सर्वस्व दे देते हैं, और जिन्होंने पद-स्पर्श मात्र से गौतम की स्त्री अहल्या का उद्धार कर दिया, ऐसे प्रभु छोटे मोटे कुटिल पापियों के तारने में भला क्या अभिमान करेंगे ? सूरदास जी कहते हैं कि ऐसे दयालु भगवान से, सर्वस्व त्यागकर और तन मन से अनुरक्त होकर, यही माँगता हूँ कि मुझे सिर्फ उनकी भक्ति का दान दीजिए जिससे आप से अधिक सम्बन्ध हो जाय, अर्थात् जिस भक्ति के आप वश में रहते हैं ॥६४॥

६५. सो कहा जु मैं न कियो—

शब्दार्थ—टेक—सहारे। गाडे—गड्ढे। क्रूर—मूर्ख।

भावार्थ—हे प्रभो, दुनियाँ में ऐसे कौन स पाप हैं जो मैंने नहीं किए और ऐसे कौन से दुर्गुण हैं जिन्हें मैंने हृदय में धारण नहीं किया। हे प्रभो, अब आप अपने पतित-पावन विरद को सत्य किस भाँति कर पाओगे ? मुझ पतित को कैसे तार सकोगे ? देखिये न, मैं कैसा पापी हूँ कि जब से मैंने जन्म लिया और मैं जीवात्मा कहलाया हूँ तब से मुझ से एक भी अवगुण नहीं छूटा और आपका नाम तो भूलकर भी नहीं लिया। मैंने गुरु से द्रोह किया, साधुओं की निंदा की, इन्द्रिय-स्वाद में लीन रहा, और अनेक छलकपट और लंपटता के कार्य किये। संसार में जितने भी

अपराध हैं सब मैंने किये। आपको छोड़ कर हे प्रभो, मैं घर घर और दरवाजे दरवाजे भटकता फिरा। भला जो अन्धा अन्धे के सहारे चलेगा वह क्यों न गड्ढे में गिरेगा ? सूरदास जी कहते हैं हे कमल के समान नेत्रों वाले, हे करुणामय, हे घटघट की जानने वाले प्रभु ! मूर्ख, कुटिल और कामी सूरदास आप से क्या प्रार्थना करे ? ॥९५॥

९६. कौन गति करिहौ मोरी नाथ—

शब्दार्थ—गति—हाल, दशा। कुचील—मलिन, दुराचारी। कुदरशन—कुरूप। रैन—रात्रि। द्रुम—वृक्ष। लेखनि—कलम। जलसागर—जलधि, समुद्र। मसि—स्याही। ममकृत—मेरे किए हुए। चाउ—चाव।

भावार्थ—हे प्रभो, न जाने आप मेरा क्या हाल करेंगे। मैं बड़ा दुष्ट, मलिन और कुरूप हूँ और सदा विषय-वासनाओं में निमग्न रहता हूँ। सारे परिवार के लिए धन प्राप्त करने के लालच में मेरा सारा दिन व्यतीत हो जाता है और सारी रात्रि पशु की भाँति बेसुध सोये रहने में चली जाती है। यदि पृथ्वी को कागज वृक्ष को कलम और सारे समुद्र को स्याही बनाया जाय और गणेश जी जन्मभर लिखते रहें तो भी मेरे किए हुए दोष लिखने को बाकी रह जायँगे। हे प्रभो आपने हाथी वेश्या और अजामिल ब्राह्मण इत्यादि अनगनित पापियों को तारा है। बुरे रास्ते पर बड़े चाव से चल कर मैंने उनसे भी अधिक अपराध किए हैं। मेरे अपराधों को लिख लिख कर यमराज के लेखक चित्रगुप्त भी उकता गए हैं, भृगु आदि ऋषि मेरे अपराध सुनकर चकित हो गए और यमराज ने सुनकर शिर हिलाया कि क्या ऐसे भी पापी दुनियाँ में मौजूद हैं ? हे कृपानिधि, आपका नाम परमपवित्र

और पतितों को पवित्र करने वाला है। सूरदास जी कहते हैं कि जब से मैंने आप का पतित-पावन विरद सुना तब से मेरे मन को कुछ धीरज बँधा है। ॥६६॥

६७. मेरी कौन गति ब्रजनाथ—

शब्दार्थ—बिसार—भुलाकर। जूंठनि—जूठा, उच्छिष्ट।

भावार्थ—हे प्रभो, मेरा क्या हाल होगा? मैं आपके भजन से विमुख रहा हूँ और आपकी शरण भी नहीं आया। सदा विषय वासना में आसक्त रहा! मैं कर्म-विकारों से जला हुआ, पापों से परिपूर्ण महा पापी हूँ। हे प्रभो, आप को भुला कर मैंने काम, क्रोध, मद और लोभ की ओर दृष्टि रक्खी है, हे प्रभो, अब यदि आप अपनी उचितकृपा करेंगे तो मेरी बिगड़ी दशा सुधर जायगी। अब तो प्रभो वही कीजिए जिससे सूरदास आपका जूठा खाकर आपके चरणों की सेवा करता रहे ॥६७॥

६८. सोइ कछु कीजै दीनदयाल –

शब्दार्थ—अहनिशि—रातदिन। भाल—मस्तक। कृपण—कंजूस।

भावार्थ—हे दीनदयाल, वही कुछ कीजिए, जिससे मैं आपका सेवक आपके चरणारविन्दों को, जो भक्त के लिए परम प्रिय हैं, पलभर के लिए भी न छोड़ सकूँ। मैं अजित इन्द्रिय हूँ, मेरी बुद्धि विषयों में आसक्त रहती है, और मन दिन दिन उलटी चाल चलता है, वह रातदिन काम, क्रोध, मद, मोह और लोभ में बेसुध भ्रमता रहता है। योग, यज्ञ, जप, तप, तीर्थ, व्रत इनमें से एक भी मेरे मस्तक पर अंकित नहीं है। इनमें से एक भी मैंने नहीं किया। हे प्रभो, अब क्या करूँ आप को कैसे प्रसन्न करूँ? मैं आपको कैसे सुन्दर लग सकता हूँ? हे समर्थ, सर्वज्ञ, कृपानिधान, अशरण को शरण देनेवाले, जग

जाल को हरण करने वाले प्रभु सुनिए सूरदास का यह हाल है। अब बताइए, यह कृपण सूरदास आपको छोड़कर और किस से प्रार्थना करे ? किसको अपनी दुःख-गाथा सुनावे ? ॥६८॥

६६. कृपा अब कीजिए बलि जाऊँ—

शब्दार्थ—सेंतमेंत—मुफ्त में। अंबुज—कमल। असोच—अशुचि, अपवित्र।

भावार्थ—हे प्रभो, मैं आपकी बलाएँ लेता हूँ, अब मेरे ऊपर दया कीजिए। आपके चरण-कमलों के बिना अब मुझे और कहीं स्थान नहीं है। मैं अपवित्र, अकर्मी और पापी हूँ इससे आपके सामने आते मुझे लज्जा आती है। लेकिन हे केशव, आप तो दयालु हैं और करुणा के सागर हैं। आपका नाम पापियों का उद्धार करने वाला कहा जाता है। आपको छोड़ कर किसके दरवाजे पर जाकर खड़ा होऊँ और भला मैं देखने में किसको अच्छा लगूँगा ? हे प्रभो, मैं कुटिल हूँ और कामी स्वभाव वाला हूँ परन्तु आपका अशरण शरण नाम संसार में प्रसिद्ध है—अर्थात् जिसका कोई पूछने वाला नहीं उसके आश्रयदाता आप ही हैं। अत्यन्त कलंकी और मलिन स्वभाव वाला मैं मुफ्त बिकने को प्रस्तुत हूँ। सूरदास जी कहते हैं कि हे पतितपावन, मैं आपके चरण कमलों को छोड़कर क्यों जाऊँ ? ॥६६॥

७०. दीनदयालु पतितपावन प्रभु—

शब्दार्थ—विरद—यश, बाना। नामी—प्रसिद्ध।

भावार्थ—हे दीनदयालु, आपने अपना पतितपावन विरद कैसे भुला दिया है ? आपने गणिका और गज को तारा तो

कौन सा बड़ा काम किया ? ऐसे आदमी को तारो, जिसने मनुष्य जन्म पाकर कभी आपका नाम नहीं लिया, और जिसने काम, क्रोध, मद-मोह और लोभ को छोड़कर अन्त तक भी आपकी ओर ध्यान नहीं दिया, जो अकर्मी है, मूर्ख है, आपकी अवज्ञा करने वाला है, कुमार्गगामी है, अत्याचार करने वाला है और जिसका नाम लेने ही से पाप लगता है, तब तो हम भी समझें कि आप सचमुच ही पतितोद्धारक हैं। हे प्रभो, मैंने इस प्रकार की अनीति की है। मैं इन्द्रिय-स्वाद के वशीभूत होकर इधर उधर भटकता रहा और जो मन में आया सो कर डाला। मैंने नियम, व्रत, तप, संयम और धर्मादि कुछ भी नहीं किया और न साधु संगति ही को पहचाना। मैं देखने में महामलीन, दीन, दुर्बल और दुःख के बन्धन से बँधा हुआ हूँ। सूरदास जी कहते हैं कि मैं ऐसा हरि-भक्त हूँ जिसका सब पापियों में पहला स्थान है, जो प्रसिद्ध पापी है। ॥७०॥

७१. मोहि प्रभु तुमसों होड़ परी—

शब्दार्थ—होड़ परी—बाजी लगी है। कहा—क्या। नागर—चतुर। हुती—थीं। जितीं—जितनी। महि—पृथ्वी पर। जक—हठ। राजीवनैन—कमल की पंखड़ी के ऐसे बड़े नेत्र वाले। दुरि—छिपकर। दरी—गुफा। (मूल पुस्तक में 'दुरी' के स्थान पर 'दरी' पाठ चाहिए) खरी—खाड़ी। अधार—सहारा। रचि पचि—जैसे तैसे बनाकर। रज—धूल। कति—कैसे। विरद—यश, नाम। निवरी—निर्णय होगा।

भावार्थ—सूरदास जी कहते हैं कि हे प्रभो, आपसे मेरी बाजी लगी है! यद्यपि हे हरि! आप बड़े चतुर हैं पर समझ में नहीं आता कि अब की बार आप क्या करेंगे ? क्योंकि मुझ में जितनी

बुद्धि थी उसे लगा कर मैंने अपने को ऐसा छिपाया है फिर आपने मुझे तारने की व्यर्थ ही हठ पकड़ी है। हे प्रभो, आप मुझे पृथ्वी पर कहीं पा ही नहीं सकते, आप मुझे तारेंगे कैसे ? मेरे तक आप पहुँच ही कैसे सकेंगे ? क्योंकि मैं आपके कमलनेत्रों से बचकर पाप-रूपी पर्वत की कन्दरा में छिपा हूँ। आपकी वहाँ दृष्टि पड़ेगी ही नहीं। अगर आपने देख भी लिया तो भी आप मुझ तक पहुँच नहीं सकेंगे, क्योंकि बीच में बड़ी गंभीर अधर्म की खाड़ी पड़ती है, जिसको पार करना आसान काम नहीं है। साधु-संगति भी मेरे उद्धार की एक युक्ति थी, जिसे आपने जैसे तैसे करके बनाया था और मेरे हृदय में उसके प्रति प्रेम का संचार किया था। परन्तु मैंने उसे भी इस प्रकार व्यर्थ कर दिया, जिस प्रकार हाथी तालाब में स्नान कर निर्मल होता है परन्तु किनारे पर आकर फिर अपने सिर में धूल डाल कर ज्यों का त्यों बन जाता है। हे प्रभो, इतनी कठिनाइयों के होते हुए भी आप मेरी मुक्ति के लिए चिन्तित हैं और हर घड़ी और हर पहर उसके सम्बन्ध में पूछ रहे हैं। परन्तु मैं कहता हूँ कि हे प्रभो, इस व्यर्थ के हठ को छोड़ दीजिए, यह आसान काम नहीं है। मेरे उद्धार के परिश्रम से आपको पसीना आ जायगा, आप पसीना-पसीना हो जायँगे। मैं, जिस की देह पापों से परिपूर्ण हो रही है, आप से क्या प्रार्थना करूँ ? आप अपने बिरद की रक्षा तो हर हालत में करेंगे ही। बस इसी में सब निर्णय हो जायगा कि सूरदास जैसे महापापियों को तार सकते हैं या नहीं ॥७१॥

७२. नाथ सकौ तौ मोहि उधारो—

शब्दार्थ—पासंग—तराजू के पलड़ों का फर्क। गारो—गर्व,

अभिमान। रमापति—विष्णु भगवान्। क्षुद्र पतित—छोटे छोटे पापी। ठौर—स्थान।

भावार्थ—हे स्वामी, आपका नाम पतितपावन है और मैं पापियों में प्रसिद्ध पापी हूँ। यदि आप सचमुच ऐसे ही हैं और पतित तारण में समर्थ हैं तो अब की बार मेरा उद्धार कर दीजिए। अजामिल बेचारे की क्या हस्ती! बड़े बड़े पापी भी मेरे पाप रूपी तराजू के पासंग के बराबर भी नहीं हो सकते। नरक तो मेरा नाम सुनते ही भागता है और यम ने वहाँ भवनों में पक्के ताले लगवा दिए हैं, अर्थात् नरक में भी मेरे लिए कोई स्थान खाली नहीं है। हे रमापति, आपने आजतक छोटे छोटे पापियों को ही तारा है, इसलिए उसके लिए अपने जी में गर्व न लाइए। पतित सूरदास के लिए भगवान् के नाम के सिवाय और कहीं स्थान नहीं है। हरि का नाम ही उसका एक मात्र सहारा है ॥७२॥

७३. तुम कब मोसों पतित उधारयो—

शब्दार्थ—मोसों—मेरे सदृश, मेरे समान। मसकत—क्लेश, मशक्कत, परिश्रम। बिरद बुलावत—प्रशंसा करवाते हो। निहोरो—एहसान। (मूल पुस्तक में 'निहारो' के स्थान पर 'निहोरो' पाठ चाहिए) कूर—मूर्ख। खोट—दोष। ठोट—मूर्ख, तत्वहीन। (मूल पुस्तक में 'टोट' के स्थान पर 'ठोट' चाहिए)।

भावार्थ—हे प्रभो, आपने मेरे समान पापियों को कब तारा है? फिर आप अपनी योंही झूठी प्रशंसा क्यों करवाते हो? ज़रा बताइए तो सही किस के तारने में आपने कष्ट उठाया है? वे तो सब आप ही तर गए। आप कहेंगे कि गीध, व्याध, हाथी और गौतम की स्त्री अहल्या को तारा है, परन्तु सरकार! इसमें आपका कोई एहसान

नहीं है। क्योंकि वे अपने पूर्व-जन्म के सुकृत्यों से आप ही तर गए। अब रही बात अजामिल की, सो वह आपका जन्म जन्मान्तर का दास था, ज़रा सी गलती से उसकी यह दशा होगई थी। यह दशा भी उसकी आप ने ही की थी। अन्त में अपनी त्रुटि की सज़ा भोग कर उसे बैकुण्ठ जाना ही था। ऐसी दशा में आपने उसे बैकुण्ठ भेज दिया तो आपने उसका कौन-सा उपकार किया? सच तो यह है जिन पापियों के सब दोष नष्ट होगए, जो निष्पाप होगए, उन्हें आपने पतित कह कर तारा है। आपने वास्तविक पापियों को कभी नहीं तारा है। सूरदास जी कहते हैं कि मैं तो आपको सच्चा उद्धारक तभी मानूँगा, आपके बाने का तभी कायल हूँगा, जब आप मुझ सदृश महामूर्ख और तत्त्वहीन का उद्धार करेंगे ॥७३॥

७४. पतितपावन हरि बिरद तुम्हारो—

शब्दार्थ—बिरद—यश, नाम। हौं तौ—मैं तो। रटत—पुकारता हुआ। अंबर—वस्त्र। कछु न सर्‌यो—कुछ न बन पड़ा।

भावार्थ—हे प्रभो, आपका पतितपावन नाम किसने रक्खा है? देखो न, मैं दीन, दुखी और अत्यन्त दुर्बल आपके दरवाजे पर पड़ा हुआ पुकार रहा हूँ परन्तु आपके कान में जूँ तक नहीं रेंगती। सुना है कि चावल भेंट करने से ही आपने सुदामा को चारों पदार्थ— अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—दान कर दिए थे। इसी प्रकार वस्त्र दान करने के कारण आपने द्रुपद की पुत्री द्रौपदी का चीर बढ़ाकर उसकी लज्जा बचाई थी। विद्या पढ़ने के कारण ही आपने अपने गुरु संदीपन का पुत्र लाकर दिया था। अर्थात् आपने उपकार के बदले उपकार किया है; निःस्वार्थ

किसी का उद्धार नहीं किया। इसका क्या प्रमाण है? देखिए न, सूरदास से कुछ न बन पड़ा तो आप उसके उद्धार करने के समय निष्ठुर और निर्दय बन गए। यही इसका ज्वलन्त प्रमाण है ॥७४॥

७५. आजु हौं एक-एक करि टरिहौं—

शब्दार्थ—हौं—मैं। टरिहौं—टलूँगा, हटूँगा। पीढ़िन को—कई पीढ़ियों का, वंशपरंपरा से। निस्तरिहौं—पार हो जाऊँगा। उघरि—खुलकर। बिरद—बाना, यश, नाम। बीरा—पान का बीड़ा।

भावार्थ—हे भगवन्, आज तो मैं अपने ही बल पर लड़कर एक न एक बात का निर्णय करके हटूँगा। या तो मैं ही रहूँगा या आप ही रहेंगे। दो में से एक की हार और दूसरे की विजय निश्चित है। यह ठीक है कि मैं सात पीढ़ियों का पापी हूँ परन्तु पापी होते हुए भी अवश्य आज मेरा उद्धार हो जायगा। अब मैं खुलकर नंगा होकर नाचना चाहता हूँ। दुनियाँ में घोषणा करना चाहता हूँ कि भगवान का पतित उद्धारन बाना बिलकुल झूठा है, वे इस उपाधि के योग्य नहीं हैं। इस तरह आज ही मैं आपको विरद बिना कर देता हूँ। इसलिए हे प्रभो, अपना विश्वास क्यों खोते हैं? अभी सँभल जाइये। आज मेरे हाथ हरि-रूपी हीरा लग गया है। सूरदास तो आज आपके द्वार पर धरना दिए बैठा है, वह तो तभी उठेगा जब आप हँस कर, प्रसन्न होकर, उसे पान का बीड़ा देकर विदा करेंगे ॥७५॥

७६. कहावत ऐसे दानी—

शब्दार्थ—सर—बाण। सारंग—धनुष। पानी—हाथ। पूरबली—पहले की। पहिचानी—पहचान। अयाची—अयाचक, न माँगने वाला।

भावार्थ— हे प्रभो, आप ऐसे महादानी कहे जाते हैं कि आपने गरीब सुदामा को चारों पदार्थ अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष प्रदान कर दिए तथा अपने गुरु सांदीपन का पुत्र लाकर दे दिया। हाथ में धनुष बाण लेकर आपने रावण के दसों मस्तक काट डाले। और पहले की जान-पहचान होने से आप ने विभीषण को लंका का राज्य दे दिया। पुराना मित्र होने से आपने सुदामा ब्राह्मण को याचक से अयाचक बना दिया, इतना दे दिया कि उसे फिर माँगने की ज़रूरत ही न रही। ऐसे दानी होने पर, हे प्रभो, सूरदास पर क्यों इतने निष्ठुर हुए हो जो वेचारा नेत्रों से भी रहित हो गया है? अन्धों पर ऐसी निष्ठुरता किस काम की? ॥७६॥

७७. मोसों बात सकुच तजि कहिये—

शब्दार्थ—सकुच—संकोच। कत व्रीडत—क्यों लजाते हो। और—अन्य, दूसरा। वाही के ह्वै रहिए—उसी के होकर रहें। कैधौं—किंवा। भोलो—भूल, त्रुटि। पन में—अवस्था में।

भावार्थ—हे प्रभो, मुझ से निःसंकोच बात कीजिए, आप लजाते क्यों हैं? यदि आप से मेरा उद्धार नहीं होने का तो कोई दूसरा बताइए, हम उसी के सेवक होकर रहें। किंवा हे प्रभो, आप पतित-पावन नाम के नहीं हैं? या मुझ से ही कुछ भूल हुई है? यदि ऐसी बात है तो मैं अपनी गलती को फिर सुधार लूँगा। कुछ अपने मुखारविन्द से तो बोलिए, सच्ची बात क्या है? सूरदास ने तो अपना यह स्वांग तीनों अवस्थाओं—बचपन, जवानी और बुढ़ापा—में खूब अच्छी तरह निबाहा है। मुझ सूरदास को सिर्फ इस बात का दुःख है कि मैं सब से पीछे रह गया हूँ पहले आकर मैंने आप से प्रार्थना नहीं की ॥७७॥

७८. प्रभु हौं वड़ी वेर को ठाढ़ो—

शब्दार्थ—ठाढ़ो—खड़ा। काढ़ो—पार कर दो, निकाल दो। वही—हिसाब की किताब।

भावार्थ—हे प्रभो, मैं कब से आपके द्वार पर खड़ा हूँ। जैसे आपने दूसरे पतितों को तारा है उन्हीं में मेरा नाम लिख कर मेरा भी उद्धार कर दीजिए क्योंकि युग-युग से आप का यही नाम चला आ रहा है। इसीलिए आप से पुकार कर कहता हूँ। मैं लज्जा से गड़ा जा रहा हूँ क्योंकि मैं गणिका, अजामिल, गीध, व्याध और गज इन पाँच पापियों से कुछ घट कर नहीं हूँ। अब तो हे प्रभो, अपने नाम को सार्थक करके या तो मेरा उद्धार कर दो या हार मान कर बैठ जाओ। यदि पापी सूरदास इसमें कुछ झूठ बोल रहा है तो आप अपनी वही खोल कर देख लें। उसमें सब हिसाब ठीक मिल जायगा, फिर कुछ टंटा ही न रहेगा, सब मामला साफ हो जायगा। ॥७८॥

७९. प्रभु हौं सब पतितन को टीको—

शब्दार्थ—टीको—श्रेष्ठ। शूल—पीड़ा, शल्य, काँटा। नीको—अच्छा।

भावार्थ—हे प्रभो, मैं सब पापियों में शिरोमणि हूँ। और तो दो ही चार दिन के पापी हैं, मैं जन्म-जन्मान्तर का पापी हूँ। आपने गणिका, अजामिल, व्याध और पूतना को तारा है। आपने मुझे छोड़कर जब दूसरों को तारा है तो फिर मेरी जी की जलन क्यों कर मिट सकती है? मैं लकीर खींचकर दावे के साथ कहता हूँ कि मुझ से बढ़कर कोई भी पाप करने में समर्थ नहीं

है। खेद है कि इतने बड़े पापी को आपने यों ही छोड़ दिया। इससे सूरदास लज्जा से मरा जाता है, कि कल के, दो चार दिन के, पापी तो तर गए और मैं देखता ही रह गया! हे प्रभो, भला बताइए तो सही, पापियों में मुझ से बढ़ कर पापी कौन है?॥७९॥

८०. हौं तो पतित शिरोमनि माधो—

शब्दार्थ—शिरोमनि—श्रेष्ठ। निस्तारो—उद्धार करो।

भावार्थ—हे माधव, मैं सब पापियों में श्रेष्ठ पापी हूँ। अजामिल जो मुझ से आधा पापी था उसे आपने बात की बात में तार दिया। हे प्रभो, अब या तो हार मान कर बैठ जाओ और यों कह दो कि मुझ से तेरा उद्धार होने का नहीं, या अभी मेरा उद्धार कर दो। क्योंकि आप जानते हैं कि सूरदास को आपकी शरण के सिवाय कोई स्थान नहीं है और आपके नाम के सिवाय कोई सहारा नहीं है।॥८०॥

८१. माधो जू और न मो ते पापी—

शब्दार्थ—घातक—हत्यारा। कुटिल—दुष्ट। चबाई—चुगलखोर। कपटी—छली। रुग्न—रोगी। दमरी—दमड़ी, एक पैसे का $\frac{1}{8}$ वाँ हिस्सा। जापी—जपने वाला। पूत—पुत्र। न मनसा धापी—इच्छा की तृप्ति नहीं हुई। कामिनी—स्त्री। थापी—स्थापित की। आलापी—बोलने वाला। गति मैं नापी—गहराई का पता लगाया। वापी—बावड़ी।

भावार्थ—हे माधव, मुझ से बढ़कर पापी और कोई नहीं है। मैं बड़ा हत्यारा, दुष्ट, चुगलखोर, छली और बड़े बड़े रोगों से संतप्त हूँ। मैं बड़ा लंपट, धूर्त, दमड़ी का बेटा अर्थात् लालची, दमड़ी पर मरने वाला और विषय-जप का जपने वाला अर्थात् विषय-वासना में आसक्त रहने वाला हूँ, मैं मांसादि भक्षण कर तथा अपेय (मदिरा आदि) पानकर कभी भी तृप्त नहीं हुआ, मेरी इच्छा कभी पूरी नहीं

हुई । मैं बड़ा कामी हूँ, विषय-रस के वश में रहने वाला हूँ, बड़ा लोभी और लालची हूँ और मेरी लालसा कभी पूरी नहीं हुई । मैं कठोर वचन बोलने वाला हूँ । अतः मन, वचन और कर्म से सबके लिए दुःसह (भारी) हो गया हूँ । हे प्रभो, आजतक आपने जितने पापी तारे हैं, उन सब की गहराई का मैंने पता लगा लिया है । उससे मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि सूरदास यदि विकार-जल से भरा हुआ अथाह समुद्र है तो उसके सामने अजामिल एक छोटी सी बावड़ी के समान है ।।८१।।

८२. हरि हौं सब पतितन पतितेश—

शब्दार्थ—हौं—मैं । सर—बराबरी । पतितेश—पतितों का राजा । दूजो—दूसरा । नकीब—जाँगड़ा, भाट, वंश का यश बखानने वाला । दुन्द—झगड़ा । विपरीत—विरोध । मोदी—बनिया । खवास—नाई । अहं—मैंपन, अहंकार । टहल—सेवा । चबावन—शिकायत, चुगली । बाजी—घोड़ा । मनोरथ—मन के अनेक संकल्प विकल्प । गर्व—घमंड । असत—झूठ । सूत—सारथी, कोचवान । पाइक—हरकारा, पत्रवाहक । गढ़—किला । नरकपति—यमराज । किवार—किवाड़, कपाट । बंदीजन—यश कहने वाले भाट, चारण आदि । नौबत—नगाड़े ।

शब्दार्थ—हे प्रभो, मैं सब पापियों का राजा हूँ । दूसरा कोई मेरी बराबरी नहीं कर सकता है । महामोह-रूपी देश मेरा राज्य है । मैं आशा-रूपी सिंहासन पर विराजमान हूँ और मैंने दंभ-रूप मुकुट सिर पर धारण किया हुआ है । अपयशरूपी नकीब ने मेरी प्रसिद्धि सर्वत्र कर दी है और वह सब मेरे दिमाग में अंकित हो गया है । काम और क्रोध मेरे दो मंत्री हैं जो अपने अपने नियमों पर चलते हैं । उनमें रातदिन दुविधा के मतभेद से

झगड़ा होता रहता है और वे विरोध पैदा करते हैं। लोभ मेरा बनिया है, मोह नाई है, अहंकार द्वारपाल (प्रतिहारी) है। "मैं मेरा" यही मेरा पाठ है, माया ही मेरा अधिकार है। तृष्णा मेरी सेविका है जो सेवा के हित इधर-उधर घूमती है; ज़रा देर के लिए भी आराम नहीं करती है। वह दुराचार रूपी सेवक से मिलकर चुगली किया करती है। मन के अनेकों संकल्प विकल्प ही मेरे घोड़े हैं, घमंड ही मेरा मस्त हाथी है, असत्य मेरा रथ और कुमति मेरा सारथी है। मन मेरा हरकारा (सन्देश-वाहक) है, अधीरज मेरा बानैत हैं और दुष्टमति मेरा दूत है। अनेक तरह की पाप रूपी सेना, जिसने अनेक पाप कर्म किए हैं, उसके साथ अपना दल-बल लेकर जब मैं यमराज के पास गया तो उसने डर के मारे किले के फाटक बंद करवा दिए अर्थात् मरने पर मुझे नरक में स्थान नहीं मिला। संसार में मेरी निंदा और हँसी होती है, वह मानों भाट और चारणों के द्वारा गाया हुआ यश फैल रहा है। हठ, अत्याचार और अधर्म रूपी शूरवीर मेरे दरवाजे पर नित्य नौबत (आनन्द के बाजे) बजाते हैं ।।८२।।

८३. प्रभु जु मैं ऐसो अमल कमायो—

शब्दार्थ—अमल—व्यवहार। साबिक—पहले की, पूर्व जन्म की। जमा—संपत्ति। मिनजालिक—मीज़ान, जोड़। वासिलबाकी—वसूल और बाकी की रकम। स्याहा—मालगुज़ारी दर्ज करने की बही। मुजमिल—योग, जुमला, कुल मिलाकर। मुस्तौफी—स्तीफा देने वाला। पाँच मुहर्रिर—पाँच लेखक, क्लर्क, यहाँ पाँच इन्द्रियों से तात्पर्य है। जिम्में—उनकी तरफ। पाँच पचीस—पाँच महाभूत और पचीस तत्त्व। अगवानी—मार्गदर्शक, नेता। सुनतगीरी—धार्मिकता। बरामद—

बर-आमद, ऊपर या सामने आया हुआ, बाहर निकाला हुआ, आमदनी। दस्तक—कर, मालगुजारी।

भावार्थ—हे भगवान् मैंने ऐसा व्यवहार किया है कि जो पहले की (पूर्व जन्म की) जमा थी, उन सब को जोड़ कर नीचे कुल योग लगा दिया है। उससे वसूल तथा बाकी की रकम कुल मिलाकर मालगुज़ारी दर्ज करने की बही में मेरी केवल अधर्म की बाकी है। अर्थात् मेरे खाते में अधर्म ही जमा है। अतएव स्वयं यमराज का मुंशी चित्रगुप्त स्तीफा दे रहा है; अब मैं किसकी शरण जाऊँ। मेरे साथ पाँच मुहर्रिर (पाँच इन्द्रियाँ) कर दिये गये हैं जिनका आचरण बड़ा विरोधी है, इस कदर विरोधी है कि जो उनके जिम्में पड़ा है उसे वे मुझ से ही माँगते हैं। पंच महाभूत और सृष्टि तत्व मार्गदर्शक बन के सब कार्य बिगाड़ रहे हैं। मेरी धार्मिकता मुझे विस्मृत हो गई है, और सब मेरी सुधि बिसार कर मुझसे अलग हो गये हैं। तुमसे पायी हुई आमदनी की समस्त रकम को लिख कर उड़ा दिया है। अब हे स्वामी सूरदास की इतनी विनती सुनिये और उसका कर माफ़ कर दीजिये। उसे मालगुजारी के भार से मुक्त कर दीजिये ॥८३॥

८४ प्रभु हौं पतितन को राजा—

शब्दार्थ—लोभ छत्र—लोभ रूपी मुकुट। मागध—भाट, चारण। मुहकम—दृढ़। किवार—किवाड़, कपाट।

भावार्थ—प्रभो, मैं सब पापियों का राजा हूँ। दूसरों की निंदा का बुरा शब्द जो मुँह में भरा हुआ है वही मानों (राजद्वार पर) नौबत बजती है। तृष्णा ही (मुझ पापी का) देश है और इसमें इच्छाएँ ही शूरवीर हैं। मेरी इन्द्रियाँ ही खड्ग बनकर मेरे साम्राज्य की रक्षा करती हैं। कुमंत्रणा देने के लिए

कामदेव मंत्री है और क्रोध द्वारपाल बनकर रहता है। मैं इस तरह का दिग्विजयी राजा हूँ जिसने लोभ का राजमुकुट पहना हुआ है और जो अहंकार के हाथी पर सवार है इतना ही नहीं है कुसंगति मेरी सेना है, मेरी विरदावली (गुणावली) गाने के लिए मद और मोह रूपी भाट हैं जो अपार दोष गा गा कर मेरा यश फैलाते हैं। इस प्रकार हे भगवान्, मैंने दृढ़ फाटकों को बंद करके अपने पाप-रूप किले को खूब सुरक्षित कर लिया है। अब देखना है कि आप इस पाप-रूप किले को तोड़ सकते हैं या नहीं ॥८४॥

८५ हरि हौं सब पतितन को राव—

शब्दार्थ—राव—राजा। शिरमौर—श्रेष्ठ। फेंट—कमरबन्द।

भावार्थ—हे प्रभो, मैं सब पापियों का राजा हूँ। ऐसा कौन है जो मेरी बराबरी कर सके। यदि कोई मेरी बराबरी करने वाला है तो बताइए वह कौन है ? मेरी समझ में व्याध, गीध और पूतना से बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। और वेश्यागामी अजामिल इन से भी बढ़कर है; परन्तु मैं इन सब का शिरोमणि हूँ। जहाँ तहाँ मैं अपनी बड़ाई सुनता हूँ कि मेरे समान दूसरा कोई नहीं है। अब रहे आजकल के राजा लोग—जो अपने पाप कर्मों के लिए प्रसिद्ध हैं—इन सब का मैं सम्राट हूँ। हे प्रभो, आजतक तो आपने अपना यश गवाया क्योंकि अब तक मुझसे भेंट नहीं हुई थी, अब मुझ से भेंट होने पर ऐसा होने का नहीं। सूरदास अब कमर कस के खड़ा है। हे प्रभो, अब या तो मेरा उद्धार करो या अपना पतित पावन विरद छोड़ दो ॥८५॥

८६ हरि हौं सब पतितन को नायक—

शब्दार्थ—नायक—मुखिया। लायक—योग्य। होड़ा होड़ी—बदाबदी। भाँडो—बर्तन। टाँडो—समुदाय, झुंड।

भावार्थ—हे प्रभो; मैं सब पतितों का मुखिया हूँ। मेरी कौन बराबरी कर सकता है? मेरी बराबरी करने योग्य कोई है ही नहीं। हजारों पाप करने पर भी आपने अजामिल को मोक्ष दिया। यदि पाप करने पर ही आप मोक्ष देते हैं तो मैं भी वही पाटी लिखूँ—वही काम करूँ। यदि मेरे मन में इसका पूरा विश्वास हो जाय तो दूसरे पापियों को बुला लाऊँ। इस पाप-मार्ग को खूब चलाऊँ और इस का खूब लेन-देन कर, सब से बड़ा व्यापारी बन जाऊँ। आपके वचन मान और उन्हें गाँठ में बाँधकर—उनके अनुसार कार्य कर—इस व्यापार में खूब सुख पाऊँ। आप का पतित-उद्धारन नाम सुनकर और आपकी शरण ताक कर मैं आपके पास दौड़ा चला आया। अब तक की मैं अपनी करनी लेकर आपके पास उपस्थित हुआ हूँ। हे प्रभो आपने मेरे उद्धार करने में बड़ी देर की है, अब फिर आपकी शरण आया हूँ। इस समय मेरा उद्धार कर दीजिए। हाँ, यह ठीक है कि आज तक मैंने बदाबदी खूब मनभावने पाप किए हैं। मुझसे भेंट हो जाने पर सब पतितों को पैरों के नीचे डाल दो अर्थात् मेरे सामने सब तुच्छ हैं। आपका बड़ा भारी भरोसा जानकर ही मैंने भाँडा भर कर—भरपेट—खूब पाप किए हैं। हे प्रभो, अब पापियों के इस झुंड को शीघ्र तार दीजिए! उसके उद्धार में विलंब न कीजिए। ॥८६॥

८७ मोसों पतित न और गुसाईं—

शब्दार्थ—अबताईं—अब तक। गुंजा—घुँघची, रत्ती। कनक—

सोना। कामिनि—स्त्री। मीन—मछली। फँदाई—जाल। निधि—कोष, भंडार। अन्याई—अत्याचार। ठौर—स्थान। सरनाई—सिर झुका कर।

शब्दार्थ—हे प्रभो, मुझ से बढ़ कर पापी और कोई नहीं है। मैंने भलाई और परोपकार छोड़ कर, सब प्रकार के अवगुण और पाप कर्म किए हैं और यह अवगुण अब तक मुझ से नहीं छूटे। जिस प्रकार बन्दर रत्तियों को जलते हुए अंगारे जान कर, उन्हें अपना शीत दूर करने के लिए इकट्ठा करता है परन्तु उनसे उसका शीत दूर नहीं होता, अपनी अज्ञानता से ही वह इस प्रकार के भ्रम में पड़ता है। उसी प्रकार मैं भी जन्मजन्मांतर से भ्रमित होता चला आ रहा हूँ। मैं कनक (स्वर्ण) और कामिनी पर मोहित हुआ हूँ और इस माया ममता से मेरी अज्ञानता अधिक बढ़ी है। जिह्वा-स्वाद से जैसे मछली अपने को फँसा देती है और जाल की ओर ध्यान नहीं देती, वैसे ही मैं जिह्वा-स्वाद से अच्छे अच्छे पदार्थों पर आसक्त हुआ और उनसे होने वाले दुःखों की ओर मेरा ध्यान नहीं गया। हे प्रभो, इस संसार का ऐश्वर्य इस प्रकार मिथ्या है, जैसे कोई स्वप्न में किसी के खजाने को पाकर प्रसन्न हो, परन्तु जागने पर उसके हाथ कुछ भी न लगे। मैं ऐसे झूठे सांसारिक ऐश्वर्य के संग्रह में लगा रहा। मैंने श्रीकृष्ण भगवान् के चरणों का स्पर्श नहीं किया। सचमुच मैंने बड़ा अन्याय किया है। हे प्रभो, इस पापी सूरदास के लिए कहीं भी स्थान नहीं है इसलिए इसको अपनी शरण में रख लीजिए ॥८७॥

८८. हरि हौं महा पतित द्रोही अभिमानी—

शब्दार्थ—पीठ—विमुख। मनोरथ—संकल्प, विकल्प। चितवत—देखता है। अंजुरी—अंगुली। निशिवासर—रात दिन। जलद—बादल। बिसरयो—भूल गया।

भावार्थ—हे प्रभो, मैं महापापी द्रोही और घमंडी हूँ, मोक्ष से विमुख और विषयरस में लीन रहा हूँ। मैंने आपकी भक्ति नहीं जानी। रात दिन झूठे संकल्प विकल्प करके मैं दुःखित और चिन्तित रहा और इच्छा पूर्ण होने पर भी मेरी तृष्णा नहीं बुझी। काल सिर पर नाच रहा है और आयु अंजुली में रक्खे पानी की तरह घट रही है। इतने पर भी मैंने उसकी ओर दृष्टि-पात नहीं किया। भगवान् से विमुख रहने वालों से मैंने रात दिन प्रीति जोड़ी है और साधुओं से कभी जान पहचान तक नहीं की। जो सारे दिन विषय रस का वर्णन करते हैं उनके बिना मैं रात दिन एक घड़ी भी जुदा न रह सका। माया, मोह, लोभ का जहाँ नाम नहीं ऐसी वृन्दावन राजधानी तथा बादल के समान सुन्दर शरीर वाले और सुखदायी भगवान श्रीकृष्ण को मैंने बिलकुल भुला दिया ॥८८॥

८९ माधव जू मोहिं काहे की लाज—

शब्दार्थ—बेकाज—व्यर्थ। टेव—आदत। श्वान—कुत्ता। गारी—गाली।

भावार्थ—हे प्रभो, मुझे काहे की लज्जा है? मैं अभिमानी जन्मजन्मान्तर से यों ही व्यर्थ भटकता चला आया हूँ। हे जगजीवन! जल थल में जितने भी जीव हैं सब आपका मार्ग देखते-देखते दुःखी हो गए पर आपने कोई सुधि नहीं ली। गुण अवगुण की मुझे कुछ पहचान नहीं रही, प्रत्येक में मुझे शंका होती है, यह मेरी आदत सी पड़ गई है। सर्वस्व भक्षण कर मैं घर में चैन से बैठा रहा, अपनी दशा पर कुछ भी विचार नहीं किया। हे प्रभो, कुत्ते के पालने वाले को सदा ही गालियाँ खानी

पड़ती हैं। इसी प्रकार मेरे पालन करने के कारण आपको भी अपवाद सहन करना पड़े तो इसमें आश्चर्य ही क्या ॥८६॥

६१. माधव जू सो अपराधी हौं—

शब्दार्थ—सौं—सौगन्ध। पठये—भेजे। दारुण—भयंकर। ज्यों ज्यों—आर्तनाद।

भावार्थ—हे प्रभो, मैं आपका अपराधी हूँ। मनुष्य जन्म पाकर मैंने कुछ भी भलाई नहीं की। अब बताइए, मेरा कैसे उद्धार होगा। मैं चिउँटी से लेकर हाथी तक सब से यमपुर की रीति कहता हूँ कि पाप-पुण्यों का फल ही सुख दुःख है और हम सब युग में उसको भोग करते हैं। मुझको वह रास्ता बताओ जिससे मैं नरक को छोड़ स्वर्ग पाऊँ। पर हे प्रभो मेरा किसके बल पर उद्धार होगा, क्योंकि मैं भक्ति में तो कभी रहा ही नहीं, मैंने भक्ति कभी नहीं की। ऐसा सुनकर जगत्पति हँस कर बोले "क्या तुम्हारी बात इस प्रकार है?" हे कृपालु करुणा-सिन्धु, फिर मैं आपकी शरण में क्योंकर आता जब कि मैं सदा पापों में ही लगा रहा। हे प्रभो, आप के चरण-कमल की सौगन्ध, मैं सच कहता हूँ कि मेरी पाप-कहानियाँ सुनकर आप बहुत हँसेंगे। मेरे शरीर से प्राण छूटते ही यमराज ने अपने सब दूत जितने घर में थे मुझे लाने के लिए भेजे। उन यमदूतों के भयंकर स्वरूप को देखकर पापी आर्त-नाद कर डरी हुई वाणी से बोलने लगता है। वे यमदूत अपने अपने हथियार लेकर और उन्हें सान पर लगा कर, तेज़ करके,..........(अगले पद से सम्बद्ध है। वास्तव में ९० और ९१ एक ही पद है, पर मूल पुस्तक में भूल से एक के दो पद कर दिए गए हैं।)

९१. दाँत चबात चले मधुपुर ते—

शब्दार्थ—मधुपुर—यमपुर। श्वपच—चांडाल। कोरिया—कोढ़ी। किंकर—दास, सेवक। हौं—मैं। हौं—हूँ। समधी—संबंधी। सोभो को—शोभा के लिए।

भावार्थ—क्रोध में भरे हुए और दाँत चबाते हुए यमलोक से मेरे घर की ओर रवाना हुए। वे मेरे घर को ढूँढते फिरे पर कोढ़ी और चांडाल तक ने मेरा घर न बताया, सब मेरी आत्मा से डरते थे। तब क्या था, यमदूत क्रोध से आग बबूला हो गए और फिर उन्होंने मुझे ऐसा कस कर पकड़ा कि फिर किसी प्रकार छूटने ही न पाया। मैं मृतक जहाँ पड़ा हुआ था वहाँ से उठा कर वे मुझे घसीट ले गए और नगर के घर घर और द्वार द्वार पर मुझे फिराया। मेरे छिपे रहने और विलंब से मिलने के कारण उन्होंने मुझे खूब मारा। उस का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। मैं "हाय ! हाय !" पुकारता रहा पर मुख से राम-नाम उच्चारण नहीं किया। यम के दूत मेरे सगे-सम्बन्धी के समान ताल के साथ मृदंग-नगाड़े-बजाते हुए बड़ी धूम-धाम से मुझे ले चले। हे स्वामी आपकी शपथ है, सूरदास की आज भली मरम्मत हुई है ॥९१॥

९२. थोरो जीवन बहुत न भारो—

शब्दार्थ—बपुरो—बेचारा, दीन, गरीब। कुलहारो—कुल्हाड़ा। मोट—गठरी। पसारि—फैलाकर। त्रिविधि गुन—तीन रस्सी वाला जाल; सत्य, रज और तम तीन प्रकार के गुण।

भावार्थ—मानव जीवन बहुत थोड़ा है, वह बहुत बड़ा नहीं है। ऐसा जानते हुए भी मैंने कभी साधुओं का सत्संग नहीं किया और न आप का नाम ही लिया। माया और

मोह से मस्त होकर मैंने किसी बात की परवाह नहीं की। मैंने अपने उद्धार का कोई उपाय न आप किया और न किसी से पूछा ही। मैंने भलाई-बुराई की कुछ गणना नहीं की जो मन में आया सो कर डाला। रात-दिन इन्द्रिय-स्वाद के; वशीभूत होकर मैंने स्वयं ही अपने जीवन को खो दिया। जिस प्रकार उन्मत्त मछली जिह्वा-स्वाद के वश में कुछ परवाह नहीं करती, परन्तु जब मछुवा (धीवर) उसे जाल में पकड़ कर और कुल्हाड़े से काट कर उसकी गठरी बना कर शिर पर धर कर ले जाता है तब उसकी अक्ल ठिकाने आती है। उसी प्रकार सूरदास भी जिह्वा आदि इन्द्रियों के स्वाद के वश में रहा और उसने किसी बात की परवाह नहीं की। परन्तु जब सत्, रज, तम रूपी गुणों के जाल में पड़ा और काल-रूपी धीवर के कुल्हाड़े की बेचारे पर मार पड़ी तब उसने "हे प्रभो" कहकर आप का नाम पुकारा और आपकी शरण में आया ॥९२॥

९३. अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल—

शब्दार्थ—चोलना—चोला। नूपुर—घुँघरू। पखावज—मृदंग। फेंटा—कमरबन्द। भाल—मस्तक। सुधि—याद।

भावार्थ—हे प्रभो, अब मैं बहुत नाच चुका। काम और क्रोध का मैंने चोला पहना और कंठ में विषय-वासना की माला पहनी। पैरों में मेरे महामोह के घुँघरू बजते रहे जिनसे निन्दा का मीठा शब्द निकलता रहा। भ्रम से भरा हुआ मन ही मेरा मृदंग बना और कुसंगति की चाल से मैं चला। हृदय के भीतर तृष्णा शब्द कर नाना प्रकार का ताल देती रही। माया का मैंने कमर में फेंटा बाँधा और मस्तक पर लोभ का तिलक लगाया।

इस प्रकार मैंने नृत्य की करोड़ों कलाएँ जल और थल में समय समय पर दिखलाईं पर अब मुझे उस देश-काल का स्मरण नहीं रहा, अर्थात् मैंने जल और थल पर अनेकों जन्म लिए हैं परन्तु अब मुझे उनका स्मरण नहीं है। हे नन्दलाल, अब सूरदास की सब अविद्या (अज्ञान) को दूर कर दो जिससे इस का यह नाचना (बार बार जन्मना और मरना) दूर हो जाय ॥६३॥

६४. ऐसी करत अनेक जन्म गये—

शब्दार्थ—स्रक—माला। बनिता—स्त्री। अनल—अग्नि।

भावार्थ—ऐसे ही भटकते भटकते अनेक जन्म गुज़र गए पर कभी मन में सन्तोष नहीं आया। दिन-दिन अधिक दुराशा के कारण तमाम लोकों में घूमा। स्वर्ग, पाताल और मृत्युलोक जहाँ जहाँ सुना वहाँ वहाँ उठ कर दौड़ पड़ा पर काम, क्रोध, मद और लोभ-रूपी अग्नि की जलन कहीं शान्त नहीं हुई। चन्दन की माला और स्त्री-विनोदादि के झूठे सुख-रूपी जल से मैंने इस अग्नि की जलन को शान्त करना चाहा परन्तु अज्ञान-वश अत्यधिक अकुला करके मैंने मानों इस जलती हुई अग्नि में घी की आहुति दे दी। भटकते-भटकते मैं दिल हार बैठा पर संसार को मैंने काम, क्रोध, मद और लोभ की अग्नि में वैसा ही जलते हुए पाया। सूरदास जी कहते हैं कि हे प्रभो, आपकी दया के बिना वह अग्नि कैसे शान्त हो सकती है। आपके कृपा-जल से ही वह बुझ सकती है, नहीं तो उसके शान्त होने का कोई उपाय नहीं है ॥९४॥

६५. बादिहि जनम गयो सिराइ—

शब्दार्थ—बादिहि—व्यर्थ ही। सिराई—शान्त हो गया, बीत

गया। आन—दूसरा। श्वान—कुत्ता। चाह—इच्छा। नरहरि—नृसिंह। भव—संसार। अंभोधि—अम्बुनिधि, समुद्र।

भावार्थ—व्यर्थ ही जन्म व्यतीत हो गया। मैंने न भगवान का स्मरण किया न गुरु की सेवा की और न मथुरा में जाकर रहा। हे मन, अब की वार मनुष्य-देह धारण कर भगवान का भजन कर इसके सिवाय उद्धार का और कोई उपाय नहीं है। मैं व्यर्थ ही, तनिक जूठन की चाह से कुत्ते की भाँति भटकता फिरा, मैंने भगवान का निर्मल यश गा कर कभी उसे प्रसन्न नहीं किया और न कभी प्रेम से पैर में घुँघरू बाँध कर तथा नाच कर उसे रिझाया ही, और थोड़ी सी रुचि पैदा करके, प्रेम से, न मैंने कभी कान से भागवत की कथा ही सुनी न मैंने नरसिंह भगवान् के अनन्य भक्तों के पैर ही धोए। प्रभु की अद्भुत लीला का कैसे वर्णन करूँ? जो अद्भुत है उसे किस प्रकार बना कर कहूँ। हे प्रभो, अपने नाम-रूपी नौका में चढ़ाकर इस सूरदास को संसार-रूपी समुद्र में डूबने से बचा लीजिए ॥६५॥

६६. माधव जु तुम कत जिय बिसरयो—

शब्दार्थ—कत—कैसे। बिसरयो—भुला दिया। अन्तरकी—भीतर की, मन की। हुते—थे। न्यारो—अलग, पृथक्।

भावार्थ—हे प्रभो, आपने मुझे कैसे हृदय से भुला दिया है? जो कुछ मैंने कर्म किए हैं आप उन्हें जानते हैं क्योंकि आप मन की बात जानने वाले अन्तर्यामी हैं। पापी समुदाय, जो खचाखच भरा हुआ था उसे आपने तार दिया; परन्तु आपने मुझे उससे पृथक् कर डाला इसी दुःख से मैं मरा जाता हूँ। बार बार भ्रमता हुआ मैं अनेकों योनियों में पतित हुआ और

अनेकों कष्ट उठाए परन्तु अब मैं आपकी सुखदायी शरण में पड़ा हूँ। इस समय भी आप क्यों बाँह छुड़वाते हैं, क्यों किनारा-कशी करते हैं? आपके ऐसा करने से मैं और अधिक भयभीत होता हूँ। मैं पापी हूँ और आप पतितोद्धारक हैं; ऐसा होते हुए अब आप मुझे क्यों छोड़ रहे हैं? मेरा उद्धार क्यों नहीं करते? यदि आप यह समझते हैं कि सूरदास पापी नहीं है तो अपने ही लिए मुझे तार दो, अपना सेवक जानकर ही मेरा उद्धार कर दो ॥९६॥

९७. जो पै तुमही विरद बिसार्‍यो—

शब्दार्थ—कर्म को मार्‍यो—दुर्भाग्य का मारा हुआ, अभागा। पुरानिनि—पुराणों से। गनिका—पिंगला नाम की वेश्या। निवार्‍यो—दूर कर दिया। सँभार्‍यो—स्मरण किया।

भावार्थ—हे करुणामय प्रभो; यदि आपने ही अपना विरद भुला दिया है, तो मैं कृपण, अभागा, फिर कहाँ जाऊँ? हे प्रभो, आप दीनों पर दया करने वाले हैं, पतितों को पवित्र करने वाले हैं, चारों वेद इस प्रकार आपका यश वर्णन करते हैं। मैंने वे पौराणिक कथाएँ भी सुनी हैं कि आपने गणिका, व्याध और अजामिल सदृश महा-पापियों को तारा था। हे प्रभो, रागी, द्वेषी, अभागा, भाग्य-शाली, पवित्र, अपवित्र जिसने भी जिस किसी समय भी आपका स्मरण किया उसी समय आपने जाकर उसके सोच को दूर कर दिया और उसे आदर दिया। इस काम में आपने ज़रा भी कभी विलंब नहीं किया। हे प्रभो, आपके नाम में अनगिनत गुण हैं, आज अपने प्रण को धारण कीजिए। अपने पतित-उद्धारन प्रण का पालन कीजिए। हे प्रभो, इस विपत्ति-काल में सूरदास पर अपनी कृपादृष्टि क्यों नहीं

डालते जब कि वह आपकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न और परिश्रम करते करते हार गया है ॥६७॥

९८, जैसे और बहुत खल तारे—

शब्दार्थ—खल—दुर्जन, पापी । कूप—कुआँ । महाअघ—बड़े पाप । दुरद—हाथी । गौतम की नारी—अहल्या । कुवलिया—कुवलया गज । सुखधाम—बैकुंठ लोक । सिधारे—चले गये । उरजनि—कुच, स्तन । रजक—धोबी । पुजाये—पूर्ण किए ।

भावार्थ—हे प्रभो, आपने जैसे और बहुत से पापियों और दुष्टों को तारा है वैसे ही मेरा भी उद्धार कर दीजिए। आप के चरणों के प्रताप और भजन की महिमा के सुख को कौन कह सकता है ? आपने दुःखित गीध, दुष्टबुद्धि वाली वेश्या, और राजा नृग को कुएँ से निकाल कर उसका उद्धार किया है। पापी अजामिल जो मरते समय खूब चिल्ला कर अपने पुत्र का नाम अर्थात् नारायण-नारायण पुकारता था इसी बहाने उसके महापापों को आपने नष्ट कर दिया। व्याध, हाथी, अहल्या, कंस, केशी दैत्य, कुवलय गज और मुष्टिक पहलवान ने कौन-से बड़े व्रत और तप किये थे, जिससे आप के सुख-धाम (बैकुंठलोक) को प्राप्त हो गए। पूतना जो अपने स्तनों पर विष लगा कर आई थी, उसे आप ने मैया यशोदा को प्राप्त होने वाली मोक्ष गति दे दी । हे प्रभो, आपने रजक और चाणूर मल्ल को मार कर तथा दावाग्नि को पीकर लोगों का दुख दूर किया। आप दुःखों का नाश करने वाले तथा भक्तों को सुख देने वाले हैं। राजा शिशुपाल जो विषय-रस में मस्त हुआ समय कुसमय का कुछ विचार नहीं करता था तथा जिसे अपने पद का बड़ा अभिमान था आपने उसका वध कर डाला। अघासुर बकासुर, तृनावर्त, धेनुक आदि जो बिलकुल गुण-रहित थे, उन्हें

आपने गुणी ही समझा, उनके दोषों को माना ही नहीं, उन पर दृष्टि ही न डाली। द्रौपदी जो सभा में नंगी की जा रही थी उसे आपने करोड़ों वस्त्रों से परिपूर्ण कर दिया और उसकी लज्जा बचा दी। विपत्तिकाल में किसी ने क्षण भर भी आप का स्मरण किया कि आप तुरन्त-ही उसी समय उसकी सहायता के लिए दौड़ पड़े। जल से पीड़ित-अत्यधिक वर्षा होने से भयभीत गोप, गोपियाँ और बछड़ों के हित के लिए आपने अपने हाथ में गोवर्द्धन पर्वत धारण किया। हे प्रभो, फिर सदा के महापापी और दीन सूरदास को आपने क्यों भुला दिया है ? ।।९८।।

९९. बहुरि की कृपाहू कहा कृपाल—

शब्दार्थ—बहुरि—फिर। कृपाहू—दया भी। कहा—क्या। विद्यमान—मौजूद। जन—भक्त। यांचत—माँगते हैं। कनकनि—कण-कण। दर दर—द्वार द्वार, दरवाजे-दरवाजे। मणिमाल—मणियों की माला। द्रवै न—नहीं पसीजता, द्रवित नहीं होता। निहोरो—एहसान।

भावार्थ—हे प्रभो, वर्तमान समय में आपके भक्त दुःखी हैं, यदि इस समय, हे दीनदयाल, आपने दया न की तो फिर पीछे की (असमय की) आपकी दया किस काम आएगी ? जीवित रहते हम निर्धन होकर दरवाजे दरवाजे कण कण के लिए याचना करते रहें और व्याकुल होकर आपका नाम पुकारते रहें, पर आप उस पर कुछ ध्यान ही नहीं देते। हे प्रभो, मरने के बाद यदि आप मणियों की माला ही चाहे क्यों न दे दें, वह हमारे किस काम की। भला वह दाता ही क्या है, जो इस कलिकाल में दीन दुःखियों को देख कर द्रवित नहीं होता है ? दया से पसीज नहीं जाता है ? सूरदास जी कहते हैं कि हे प्रभो, उन लोगों पर तारने का आप का क्या एहसान है, जो वेद की मर्यादा पर चलते हैं।।९९।।

१००. कौन सुने यह बात हमारी—

शब्दार्थ—बिथा—व्यथा, दुःख। बनवारी—श्रीकृष्ण। यादवपति—श्रीकृष्ण। बलि—बलिहारी, न्योछावर। गुसाते—गुस्से से। बिसारी—भुला दिया।

भावार्थ—हे प्रभो, हमारी यह बात दूसरा कौन सुनेगा? आपके बिना मैं और किसी को सामर्थ्यवान् नहीं देखता हूँ, जिसको कि मैं अपनी व्यथा कह सुनाऊँ। हे प्रभो, तुम्हारी लीला जानी नहीं जाती, तुम अनाथों के स्वामी हो, दीन दयालु हो, और कुंज निकुंजों में विहार करने वाले हो। तुमने सदा ही भक्तों की सहायता की है। हे प्रभो, भक्तों के तारने की जो प्रतिज्ञा आपने मन में धारण की है उसी का पालन किया। हे यदुपति, फिर अब किसकी शरण जाऊँ, आपकी बलिहारी, मुझे अपनी शरण में रख कर मेरे भय को दूर कर दीजिए। सूरदास आपके चरणों पर न्योछावर है, हे प्रभो, आपने किस गुस्से एवं अपराध से उसे भुला दिया है ॥१२०॥

सूचना—मूल पुस्तक में ये सौ पद सूरसागर के प्रथम स्कंध से उद्धृत किए गए हैं। आगे के पद सूर-सागर के दशम स्कंध से लिए गए हैं। दशम स्कंध के शुरू के ४४ पद छोड़कर ४५ वें पद से यहाँ उद्धृत किए गए हैं, इसलिए पदों की क्रम संख्या यहाँ भी ४५ से शुरु की गई है।

४५. कपट करि ब्रजहिं पूतना आई—

शब्दार्थ—छीर—क्षीर, दूध। भुवंगम—सर्प।

भावार्थ—राजा कंस के भेजने पर पूतना कपट रूप धारण कर, खूब बन ठन कर तथा अपने कुचों पर ज़हर लगा कर

व्रज-भूमि में आई। वह अपने स्तन का दूध पिलाकर श्रीकृष्ण को मारना चाहती थी। यशोदा के यहाँ पहुँच कर श्रीकृष्ण का मुख चूमने लगी, ललचीले नेत्रों से उनके स्वरूप को देखने लगी, और कंठ से लगाने लगी। वह कहने लगी, "नन्दरानी! तुम्हारे बड़े भाग्य हैं जिनके ऐसे सुन्दर कुँवर कन्हैया हैं।" फिर हाथ पकड़ कर अपना दूध पिलाने लगी। पर श्रीकृष्ण सब समझते थे, वे उसके स्तन पीते समय ही उसके प्राण खींचने लगे। इस पर घर से बाहर होकर वह राक्षसी चिल्ला चिल्ला कर कहने लगी कि तुम्हारी बलैया लूँ मुझे छोड़ दो। पर अन्त में मूर्छित होकर इस प्रकार पृथ्वी पर गिर गई मानों सर्प ने उसे काटा हो। सूरदास जी कहते हैं कि हे प्रभो, आपकी लीला मैं भक्तों को गाकर सुनाता हूँ ॥४५॥

४६. नेकु गोपाले मोको देरी—

शब्दार्थ—कमलवदन—कमल के समान मुख। कनिया—गोद। नीके करि—अच्छी तरह से। सरोरुह—कमल। अधर—ओष्ठ। दसन—दाँत। नासा—नासिका। भ्राजत—शोभा देता है। मन्मथ—कामदेव। कोटि—करोड़ों। वारने देरी—वारने दे, न्योछावर करने दे। निगमन—वेद।

भावार्थ—अरी, ज़रा श्रीकृष्ण को मुझे दे। अच्छी तरह से मैं अब उसके कमल मुख को देख लूँ, फिर तू अपनी गोद में ले लेना। इसके हाथ और पैर कमल के समान अत्यन्त कोमल हैं उसी प्रकार इसके ओष्ठ, दाँत और नासिका भी बड़ी अच्छी हैं। इस के सिर पर लटकन और कंठ में मणियों की माला शोभित हो रही है। ऐसे सुन्दर स्वरूप पर मैं करोड़ों कामदेवों को वार कर (न्योछावर कर) फेंक दूँ। हे सखी, मैं रात दिन यही विचारती हूँ कि ऐसा

सुख मैंने कभी नहीं पाया जैसा इस को देखने से प्राप्त हुआ है। यह सुन्दर साँवली मूर्ति, वेदों का धन और सनकादि ऋषियों का सर्वस्व है और बड़े भाग से तूने इसे पाया है। यह वही मूर्ति है जिसको देख कर संसार के नेत्र, करोड़ों चाँद और सूर्य भी लज्जित होते हैं। यशोदा और गोपियों के प्राण तथा पूतना के वैरी श्रीकृष्ण की ऐसी मोहनी मूर्ति पर सूरदास बलिहारी है ॥४६॥

४७. पालने श्याम हलावति जननि—

शब्दार्थ—जननी—माता। नन्द घरनी—नंद की स्त्री, यशोदा। अंकम—गोद। पुरातन करनी—पुराने कर्म।

भावार्थ—माता यशोदा श्रीकृष्ण को पालने में हिला रही हैं। यशोदा जी बड़ी प्रसन्न होकर तथा वात्सल्य रस में निमग्न होकर बड़े अनुराग से अपनी सखियों के साथ गाती हैं। किलकारियाँ मार कर श्रीकृष्ण माता की गोदी में जाने के लिए बाहें फैलाते हैं, इस पर यशोदा जी प्रसन्न होकर उन्हें अपनी गोद में उठा लेती हैं। श्रीकृष्ण को मुदित देख कर यशोदा जी हर्षोत्फुल्ल होगई, मानो उनके पिछले जन्म के पुण्य आज सफल होगए हैं ॥४७॥

४८. गोपाल माई पालने झुलाए—

शब्दार्थ—माई—माता। अम्बर—आकाश।

भावार्थ—श्रीकृष्ण को यशोदा जी पालने में झुलाती हैं। उनके दर्शन के लिए तथा उनकी बालक्रीड़ा को देखने की इच्छा से मुनि तथा तेंतीस करोड़ देवता, आकाश-मंडल में छा गए। जिस परमात्मा का अन्त आज तक ब्रह्मा, शिव और सनकादि ऋषि भी न पा सके, उसे देखो आज नन्द और यशोदा प्रसन्न होकर हिला रहे हैं। जब बालक कृष्ण किलकारियाँ मार कर प्रसन्न होते हैं तब दंपति के मन में उन्हें प्यार करने के लिए उत्कट अभिलाषा

बढ़ती है। सूरदास जी कहते हैं कि भगवान् ने भक्तों के हित के लिए नाना प्रकार के वेष धारण किए हैं ॥४८॥

४६. जननी देखि छबि बलि जाति—

शब्दार्थ—निधनी—निर्धन। त्रिदशपति—देवपति, इन्द्र। तारि—ताली।

भावार्थ—माता यशोदा जी श्रीकृष्ण की शोभा को देख-देख कर उस पर बलि जाती है। उन्हें देख कर रात दिन ऐसी प्रसन्न होती हैं जैसे कोई निर्धन धन पाकर प्रसन्न होता है। श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं को देख कर नंद-यशोदा और व्रज-नारियाँ अपने को धन्य मानती हैं। श्रीकृष्ण माता के मुख को देख कर किलकारियाँ मारते हैं और इन्द्र प्रसन्न होकर ताली बजाते हैं। नन्द जी धन्य हैं, यशोदा जी धन्य हैं, गोपी धन्य हैं, व्रजवासी धन्य हैं और सूरदास जी कहते हैं कि यह व्रज-भूमि भी धन्य है जिसमें भगवान् ने अपना पावन जन्म ग्रहण किया है ॥४९॥

५०. अब हौं श्याम बलि जाऊँ हरो—

शब्दार्थ—बलि जाऊँ—बलैया लेती हूँ। विलोकति—देखती है। घरी—घड़ी। लड़ैहौं—लाड़ करूँगी, प्यार करूँगी। भौन—भवन, सदन, घर। कोटि—करोड़ों। दुख भरी—दुःख उठाए। त्रियव्रत—स्त्रियों के व्रत। पैंड़े में—मार्ग में। निधि—कोष। रंक—दीन, गरीब। परी—पड़ी।

भावार्थ—हे कृष्ण, अब मैं तेरी बलैया लेती हूँ। रात दिन मैं तेरा मुख देखती रहती हूँ, एक घड़ी भी तुझे छोड़ नहीं सकती। मैं घर के सब काम काज एक ओर धर कर अपने गोपाल को प्यार करूँगी, खिलाऊँगी। मैं दुःखिया, करोड़ों दुःखों से पीड़ित

रही, उसे ऐसे सुन्दर बच्चे को खिलाने का सुख कब मिला था ? जिस सुख को प्राप्त करने के लिए मैंने शिव-पार्वती को मनाया और स्त्री-उचित अनेक नेम और व्रत किए। सूरदास जी कहते हैं कि यशोदा जी को यह बाल-क्रीड़ा का सुख, इस प्रकार सुलभ हो गया, जैसे किसी दीन को मार्ग में पड़ा कोष मिल गया हो ॥५०॥

५०. रहि किलकति यशुदा की कनियाँ—

भावार्थ—श्रीकृष्ण यशोदा की गोदी में किलकारियाँ मार रहे हैं। हे मुक्त निर्धन के धन ! ऐसा कहकर और श्रीकृष्ण के मुख को बार बार देख कर यशोदा जी प्रसन्न होती और हँसती हैं। कहती हैं कि हे लल्ला, तेरी बलैया लूँ। न जाने ऐसा कोमल शरीर वाला श्याम तृणावर्त के आक्रमण से कैसे बच पाया ? न जाने किस पुण्य से और किसने उसकी रक्षा की ? ऐसा विचार कर माता पछताती हैं और कहती हैं देखो, पूतना कैसे छल करके आई थी ? इसी प्रकार यह दुष्ट तृणावर्त भी आया था। इस प्रकार माता को दुःखी जानकर भगवान् नन्हीं नन्हीं दँतुलियाँ दिखाकर हँसने लगे और अपनी हँसी द्वारा उन्होंने माता के चित्त के दुःख को भुला दिया ॥५१॥

मीराबाई

१. पायो जी मैंने नाम रतन धन पायो—

शब्दार्थ—अमोलक—अमूल्य। किरपा—कृपा। खोवायो—गँवाया। सवायो—अधिक। खेवटिया—खेवनहार, केवट, मल्लाह। नागर—चतुर। हरख हरख—हर्षित होकर। जस—यश।

भावार्थ—अजी मैंने परमात्मा के नाम-रत्न-रूप धन को प्राप्त कर लिया है। मेरे सत्-गुरु ने मुझे अपना कर (शरण देकर) एवं मेरे ऊपर कृपा करके परमात्मा का नाम-रूप अमूल्य वस्तु मुझे प्रदान की। संसार में सब कुछ खो कर भी मैं तो जन्म-जन्म की पूँजी पा गई। यह नाम-रूपी पूँजी ऐसी है जिसे न कोई खर्च कर सकता है, न चोर चुरा सकता है वरन् व्यवहार में लाने से दिन दिन अधिक बढ़ती जाती है। मैं तो सत्य की नाव में बैठ कर, जिसके चलाने वाले वे ही सत-गुरु थे, संसार-रूपी समुद्र से पार होगई। इसी से प्रसन्न होकर मीरा अपने नटनागर प्रभु श्रीकृष्ण का यशोगान करती है ॥१॥

२. बसो मेरे नैनन में नन्दलाल—

शब्दार्थ—नन्दलाल—श्रीकृष्ण। बिसाल—विशाल, बड़े। मोहनी—मोहित करने वाली। मूरति—मूर्ति, देह। सुरति—स्वरूप। बने—शोभित हैं। अधर—नीचे के ओष्ठ। सुधारस—अमृत जैसा रस। राजति—शोभित है। बैजन्ती—वैजयन्ती, विष्णु के पहनने की माला। छुद्रघंटिका—घुँवरूदार करधनी। कटितट—कटि प्रदेश, कमर पर। सबद—शब्द, ध्वनि। रसाल—रसीला, मीठा, मधुर। सन्तन—सन्तों को। बछल—वत्सल, स्नेह करने वाले।

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर नन्द लाला, तुम मेरी आँखों में बस रहो। तुम्हारी मोहनी मूर्ति, तुम्हारी साँवली रूप-छटा और तुम्हारे सुन्दर विशाल नेत्रों का क्या कहना ? तुम्हारे अधरों में सुधा का वास है और उन पर (सुरीली) वंशी रहती है। तुम्हारे हृदय में वैजयन्ती माला शोभा दे रही है। तुम्हारी कमर में छनछुन करती हुई करधनी पड़ी है, तुम्हारे घुँघरुओं से रसीली झनकार निकल रही है। इस प्रकार मनोहर रूप-माधुरी और वेश-भूषा से युक्त भक्तवत्सल गोपाल [illegible] हृदय को अत्यन्त सुख देने वाले हैं ॥२॥

३. करम गति टारे नाहिं टरै—

शब्दार्थ—करमगति—कर्म की रेख, विधि के अंक। टारे नाहिं टरे—हटाए नहीं हटते, मिटाए नहीं मिटते। सतवादी—सत्यवादी। नीर—जल। गरे—गले। नागर—चतुर। गिरधर—श्रीकृष्ण।

भावार्थ—कर्म की रेखा मिटाए नहीं मिटती। देखो, दुर्भाग्य के ही कारण सत्यवादी हरिश्चन्द्र जैसे राजा को चांडाल के घर पानी भरना पड़ा। महान् धर्मात्मा एवं पराक्रमी पाँचों पाँडवों कुन्ती और द्रौपदी की हड्डियाँ हिमालय में गल गईं। राजा बलि जिसने इन्द्रासन लेने के लिए सैकड़ों यज्ञ किए थे वह कर्म की गति से पाताल-गामी हुआ। मीरा के प्रभु गिरिधर नागर ही ऐसे हैं जो विष को अमृत कर देते हैं। ऐसा प्रचलित है कि मीरा को भक्तों के साथ घूमते देख कर मेवाड़ के राणा ने उसे रोकना चाहा, जब वह न मानी तो उसके लिए राणा ने विष का प्याला भेजा जो मीरा के हाथों में जाकर चरणामृत होगया ॥३॥

४. नहिं ऐसो जनम वारंबार—

शब्दार्थ—कछु—कुछ। प्रगटे—प्रकट हुए। मानुसा—मनुष्य का।

अवतार—जन्म । जात—नष्ट होते, बीतते । बार—देरी । जोर—प्रबल, जोरों में । अनन्त—अन्त रहित । ओखी—गहरी । बेड़ा—नाव, बेड़ा । विरछ—वृक्ष । पात—पत्ते । डार—डाली, शाखा । सुरत—स्मरण, याद ।

भावार्थ—ऐसा जन्म बार बार नहीं मिलता । न जाने किन पुण्यों के उदय होने से ऐसा अमूल्य मानव-जीवन मिला है । जो पल-पल बढ़ता और क्षण-क्षण घटता जाता है अर्थात् जितनी उमर बढ़ती जाती है, उतना ही जीवन का काल निकल जाता है और जिसके नष्ट होने में कुछ देर नहीं लगती । एक बार नष्ट होकर पुनः उसी शरीर की प्राप्ति इसी प्रकार असंभव है जैसे पत्तों का एक बार वृक्ष से गिर कर पुनः उस पर लगना कठिन है । संसार-रूपी समुद्र बड़ा प्रबल और तूफानी है, इसमें विषय के बड़े प्रबल प्रवाह हैं । इसलिए हे मनुष्य, भगवान् का नाम-स्मरण रूप बेड़ा बाँध कर शीघ्र ही संसार समुद्र के उस पार चला जा । मीरा, साधु-सन्त एवं महन्त पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि मनुष्य जीवन केवल दो चार दिन का है । इस लिए शीघ्र ही अपने उद्धार का उपाय कर लो ॥४॥

५. मन रे परसि हरि के चरन—

शब्दार्थ—परसि—स्पर्श कर । सुभग—सुन्दर । कमल कोमल—कमल के समान कोमल । त्रिविध ज्वाला—तीन प्रकार के ताप ये होते हैं—१ आध्यात्मिक अर्थात् मानसिक और शारीरिक, २ आधि-दैविक, देवताओं द्वारा होने वाले, जैसे अवर्षण, अतिवर्षण इत्यादि, ३ आधि-भौतिक—जीवों द्वारा होने वाले, जैसे टिड्डी दल आदि का उत्पात । अटल कीन्हों—आकाश में अचल बना कर स्थापित कर दिया । ब्रह्मांड—विश्व । भेंट्यो—आलिंगन किया, व्याप्त किया, नापा । नख सिखौ—सर्वांग में । श्रीभरन—शोभा धारण करने वाले । गौतमघरन—गौतम

ऋषि की पत्नी, अहल्या। नाथ्यो—नाथा, नाक छेद कर रस्सी डाली, वश में किया। गोप—ग्वाला। गरब—गर्व। मघवा—इन्द्र। अगम—अगम्य स्थान, दुस्तर, समुद्र आदि। तारण—तारने वाला। तरण—नौका, बेड़ा। तारण-तरण—तरन-तारन, भवसागर से पार करने वाला।

भावार्थ—ऐ मन, भगवान् के उन चरणों की वन्दना कर जो कमल के समान कोमल, सुन्दर, शीतल और तीनों प्रकार के ताप को हरण करने वाले हैं। जिन चरणों को प्रह्लाद ने इन्द्र पद पाने के लिए छुआ, और जिन चरणों ने ध्रुव को अपनी शरण में लेकर आकाश में अचल बना कर स्थापित कर दिया। जिन चरणों ने सारे विश्व को नाप डाला, जो नख से लेकर शिखा तक सर्वांग-शोभा धारण किए हुए हैं। जिनके स्पर्श से गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या तर गई। जिन चरणों ने काली नाग को वश में किया। गोपों की रक्षा के लिए जिस भगवान् ने गोवर्द्धन पर्वत हाथ में लिया और इन्द्र का गर्व चूर्ण किया। मीराबाई कहती हैं बस एक मात्र वही गिरिधरलाल इस संसार समुद्र से पार करने वाले हैं। इस लिए हे मन, उन्हीं के चरणों का ध्यान कर ॥५॥

६. अब नहिं बिसरूँ—

शब्दार्थ—बिसरूँ—भुलाऊँ। म्हारे—हमारे, अपने। हिरदे—हृदय। करस्याँ—करूँगी। बतलाइयाँ—पूछें। कई देणो—कह देना। पण—दाँव, बाजी। टाँक—चार माशे का तौल। गया रिसाय—गुस्से होगए। मेड़तणो—मेड़तिया रानी अर्थात् मीराबाई। सबल—बलवान्। धणी—स्वामी, पति। थारी—आपकी। राखण हारो—रक्षक।

भावार्थ—मेरे हृदय पर हरिनाम लिखा गया है। मैं अब उसे नहीं भुला सकती हूँ। अपने सच्चे गुरुदेव के बतलाए हुए

नाम को अब मैं बिलकुल नहीं भूलूँगी। मीरा अब महल में बैठ कर उठते-बैठते हर समय राम-नाम का स्मरण करेगी। और बस अब साधु-सन्तों की सेवा करूँगी क्योंकि उसे इसके सिवाय दूसरा कोई काम नहीं है। यदि राणा जी पूछें तो उत्तर दे देना कि मैंने (मीरा ने) तो अब हरिनाम की बाजी लगा दी है और इसी में मेरा दिन दूना और रात चौगुना लाभ है। मैंने अब सब आहार-विहार छोड़ दिए हैं। अब मैं सीपी भर जल पीती और चार माशा भर अन्न खाती हूँ अर्थात् मैंने अपना आहार, विहार भी नियमित कर लिया है, उसकी भी साधना प्रारम्भ कर दी है। (ध्यानावस्थित रहने के कारण) राणा जी के पूछने पर भी मैं उन से कुछ बोली नहीं, इस से वे गुस्सा हो गए और उन्होंने क्रोध में आकर विष का प्याला भेजा और कहा कि इसे मेड़तिया रानी (मीराबाई) को जाकर दे दो। मैं उस विष को अपने सर्व-शक्तिमान् स्वामी श्रीकृष्ण का चरणामृत समझ कर पी गई। और विष का प्याला पीकर फिर उसी स्थान पर भजन करने लग गई। ज़हर का मुझ पर कुछ भी असर नहीं हुआ। राणाजी! आप के मारे मैं नहीं मर सकती हूँ क्योंकि मेरा रक्षक कोई और ही—भगवान कृष्ण है ॥६॥

७. कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत—

शब्दार्थ—रमता राम—एक स्थान पर न रहने वाला साधु, जीव। अतीत—भूतकाल। आसण—आसन। अडिग—अचल, स्थिर। जोगी—साधु, जीव। अधबीच—मध्य में ही, बीच में ही। दीसै—दिखाई देता है। चीत—ध्यान।

भावार्थ—हे रमता राम जीव, किसी दिन तुम अतीतकाल का स्मरण करोगे। भजन की रीति के अनुसार जब तुम अचल आसन

मार कर बैठे तब मैं समझी कि तुम मेरे साथ ही चलोगे परन्तु तुम बीच ही में छोड़ कर चले गए। तुम न आते दीखते हो न जाते नज़र आते हो, ठीक है, भला, जोगी (निर्मोही) किस का मित्र होता है ! इसलिए मीरा अपने एक मात्र आराध्य-देव श्रीकृष्ण के चरणों में ही चित्त लगावेगी—उनका ध्यान करेगी ॥७॥

८. गोविंद कबहुँ मिले पिया मेरा—

शब्दार्थ—पिया—प्रीतम। कँवल—कमल। नैणाँ—नयन। नेरा—निकट। चाव—अभिलाषा। घनेरो—घना, बहुत। मीत—मित्र।

भावार्थ—हे प्रिय श्रीकृष्ण, तुम मुझे कब मिलोगे ? अपने नेत्रों के निकट रख कर, कब मैं आपके चरण-कमलों का हँस-हँस कर दर्शन करूँगी ? आप के दर्शन की मुझे बड़ी उत्कंठा है। मैं आप के मुख को कब देख सकूँगी ? मेरे व्याकुल प्राण धैर्य नहीं रखते, अतएव हे प्रीतम, शीघ्र दर्शन दो। मीरा के प्रवीण प्रीतम श्रीकृष्ण ! अब आपकी विरहाग्नि की जलन बहुत बढ़ गई है। इससे शीघ्र दर्शन देकर इसे शान्त करो ॥८॥

९. घुँघरू बाँध मीरा नाची रे—

शब्दार्थ—बावरी—पागल। कुलनासी—वंश-नाशक। दासी—दासी। अविनासी—जिसका कभी नाश न हो, परमात्मा।

भावार्थ—जब पैरों में घुँघरू बाँध कर मीरा नाची तो लोग कहने लगे कि मीरा पागल होगई है। सास ने कहा यह कुल-नाशक है। क्रोधित होकर राणा जी ने ज़हर का प्याला भेजा जिसको मीरा हँसते-हँसते पी गई। अरे, मैं तो अपने प्रभु (श्रीकृष्ण) की आपही दासी बन गई। इसी से मीरा के प्रभु अविनाशी श्रीकृष्ण मुझ से शीघ्र ही आकर मिले ॥९॥

१०. चालो मन गंगा जमना तीर--

शब्दार्थ—तीर—तट, किनारा, कूल। पाणी—जल। सीतल—शीतल, शान्त। कान्हों—कन्हैया, कृष्ण। बलवीर—बलदेव जी। झलकत—जगमगाते हैं। हीर—हीरे। सीर--सिर, मस्तक।

भावार्थ—ऐ रे मन, गंगा-यमुना के तट की ओर प्रस्थान कर। जिस गंगा-यमुना का जल बड़ा निर्मल है और जिसमें स्नान करने से शरीर शीतल हो जाता है। जिस गंगा यमुना के तट पर श्रीकृष्ण बलदेव को साथ लेकर वंसी बजाते हैं, जिनके शरीर पर पीतांबर, सिर पर मोर-मुकुट शोभित है, और जिनके कानों में हीरे के कुंडल जगमगा रहे हैं। मीराबाई कहती हैं कि ऐसे गिरधारी-श्रीकृष्ण के चरण-कमलों पर मेरा सिर रक्खा है अर्थात् भगवान के चरण-कमलों को मेरा प्रणाम स्वीकार हो ॥१०॥

११. तेरो मरम नहि पायो रे जोगी

शब्दार्थ--मरम—भेद, रहस्य। जोगी—अपने प्रेम-पात्र परमात्मा से अभिप्राय है। साकार भगवान श्रीकृष्ण के उपासकों में से एक मीरा की कविता में ही 'रहस्य-वाद' की झलक मिलती है। वे कबीर आदि रहस्यवादी कवियों की तरह 'योगी' शब्द का प्रयोग कभी जीव के लिए और कभी अध्यात्म प्रेमी के लिए करती हैं। आसन माँडि—आसन बिछाकर। गल—गला, कंठ। बिच—में। सेली—योगियों की माला। हाजिरियो—हाथ में रखने का रुमाल। भभूति—विभूत, भस्म। रमायो—रमाई है। लिख्यो—लिखा हुआ। सोही—वही।

भावार्थ—अरे योगी (परमात्मा) तेरे रहस्य का पता नहीं चला। आसन बिछाकर और गुफा में बैठकर हरि का ध्यान लगाया। गले में माला पहनी,हाथ में रुमाली ली और अंग में भस्म

रमाई। मीरा के प्रभु तो अविनाशी हरि ही हैं। जो कुछ उसके भाग्य में लिखा था वह उसे प्राप्त हो गया ॥११॥

भज मन चरण कंवल अबिनासी—

शब्दार्थ—अबिनासी—जिसका नाश न हो, परमात्मा। जेतई—जितने ही। तेतई—उतने ही। धरण—पृथ्वी। बिच—बीच में। उठ-जासी—जायगा। करवट कासी—काशी में आरे से शरीर को चिराने से; प्राचीन ज़माने में तीर्थस्थानों में ऐसे आरे होते थे जिनमें प्राण देने से शुभ फल माना जाता था। गरब—गर्व। माटी—मट्टी। चसर की बाजी—चौपड़ की खेल। पड्याँ—पड़ने पर। कहा—क्या। भयो—हुआ। भगवा—गेरुए वस्त्र। जुगति—युक्ति, ईश्वर-प्राप्ति का उपाय। उलटि—लौट कर। आसी—आयगा। अरज—प्रार्थना। अबला—स्त्री। करौं—करती हूँ। जम की फाँसी—मृत्यु का भय, आवागमन।

भावार्थ—हे मन, भगवान् के अविनाशी चरण-कमलों का भजन कर। पृथ्वी और आकाश के मध्य जितना कुछ दिखाई देता है वह सब कुछ विलीन हो जायगा। व्रत करने और तीर्थ-सेवन करने से क्या हुआ? काशी जाकर आरे के नीचे कट कर प्राण देने से क्या लाभ? अर्थात् यह सब व्यर्थ है इस क्षण-भंगुर शरीर का गर्व करना भी व्यर्थ है क्योंकि यह शीघ्र ही मिट्टी में मिल जायगा। यह सारा संसार चौपड़ के खेल के समान है, जो सन्ध्या होने पर उठ जायगा। गेरुवा वस्त्र पहन कर तथा घर-बार छोड़ कर संन्यासी होने से क्या लाभ? साधु होने पर भी यदि योग युक्ति—ईश्वर प्राप्ति का उपाय—न जाना, तो तू लौटकर फिर आवागमन में पड़ जायगा। फिर तुझे पुनर्जन्म लेना पड़ेगा। हे श्रीकृष्ण, आपकी दासी मैं अबला आपसे हाथ जोड़ कर प्रार्थना

करती हूँ कि मुझे मृत्यु के भय से मुक्त कर दीजिए। आवागमन से छुड़ा दीजिए। क्योंकि आप मीरा के स्वामी हैं और अबला की रक्षा करना आपका कर्तव्य है ॥१२॥

१३. भज ले रे मन गोपाल गुणा—

शब्दार्थ—गोपाल—गो पालक, श्रीकृष्ण। गुणा—गुण। अधम—पापी। अधिकार--बल। अविस्वास—अप्रतीति, अविश्वास। साखि—साक्षी, प्रमाण। सदना—एक कसाई जो भगवान का बड़ा भक्त था। रसना—जिह्वा। रचत—सृजन करते, बनाते। सुमिरो—स्मरण करो। पीपा—एक शाक्त राजा थे जो एक वैष्णव साधु के संसर्ग से विष्णु-भक्त हो कर तर गए। सेवरी—शबरी।

भावार्थ--हे मन, भगवान् श्रीकृष्ण का गुण गान कर। भगवान की शरण आकर जिस किसी ने अनन्य मन से भगवान् का भजन किया वह महा पापी होता हुआ भी भजन के बल से तर गया। यदि विश्वास नहीं है तो प्रमाण के लिए मैं गणिका--पिंगला नाम की वेश्या---अजामिल और सदना कसाई को पेश करती हूँ जो भगवान् का नाम लेने से तर गए और इस संसार-सागर से पार होगए। कितने खेद का विषय है कि जिस कृपालु परमात्मा ने तुम्हें तन दिया, मन दिया, नेत्र दिए, नासिका दी, मुख दिया, जिह्वा दी, तथा धन-धान्य से तुम्हें परिपूर्ण किया, जिस प्रभु को तुम्हारी रचना करने में दस मास व्यतीत हुए, उसका तुम एक क्षण भी भजन नहीं करते हो! बाल्यावस्था खेल कूद में बिता दी, युवावस्था घने रूप सौंदर्य के पीछे खो दी और वृद्धावस्था में आलस्य पैदा होने से मोह-माया में निमग्न रहे। भगवान् का भजन कभी भी नहीं किया, संपूर्ण आयु यों ही खो दी। हे भाई, भगवान का भजन करो। देखो न गज और गीध भगवान् के भजन से ही तर गए।

बिना भजन किये आज तक किसी का उद्धार नहीं हुआ। और देखिए, भजन के प्रभाव ही से धन्ना भक्त, पीपा राजा, शबरी और मीराबाई आदि तर गईं। इस लिए हे मानव, भगवान का भजन करो, इसी में तुम्हारा कल्याण है ॥१३॥

१४. बरसै बदरिया सावन की—

शब्दार्थ—बदरिया = बादल। उमग्यो = उमंग्यौ, उमंगित हुआ, लालसा जागरित हुई। मनवा = मन। भनक = जरा खटका, अस्पष्ट ध्वनि। आवन = आने। उमड़-घुमड़ = उमड़ कर, घिरकर। दमक = बिजली। दमक = चमक। झर = झड़। लावन की = लाने वाली। नन्हीं = छोटी। बूँदन = बूँदों से। सोहावन = सुहावनी। गावन की = गाने की। मूल पाठ में 'सावन की' के स्थान में 'गावन की' पाठ होना चाहिए था।

भावार्थ—सावन के सुहावने, मनभावने बादल बरस रहे हैं। अरी सखी! सावन के महीने में प्रीतम से मिलने की लालसा जागरित हो गई। क्या कहीं तुझे कृष्ण के आने की खबर मिली है? क्या तेरे कान में उनके आने की भनक पड़ी? क्या वह आवेंगे या नहीं? देखो न, झड़ी लाने वाली काली घटाएँ चारों ओर से उमड़ती चली आ रही हैं, बार-बार उसमें बिजली चमक रही है। अहा! बड़ी सुहावनी शीतल वायु बहने लगी है, नन्हीं-नन्हीं बूँदों में मेंह बरस रहा है। ऐसे सुहावने अवसर पर मीरा अपने गिरिधर नागर के लिए आनन्दोत्सव में निमग्न है। हे प्रभो, आपके शुभागमन की सूचक ये सावन की घटाएँ क्या आनन्द-मंगल गा रही हैं!

तुलसीदास

१. छोनी में के छोनी पति--

शब्दार्थ--छोनी—पृथ्वी। छोनीपति—राजा। छाजै—सुशोभित है। छोनी छोनी—कई अक्षौहिणी। छिति—क्षिति, पृथ्वी। निसिराज—राजा जनक। बरिबंड—बलवान्। वपु—शरीर। बरकाज—विवाह। बिरुद यश। बाजे बाजे—कोई कोई। बाहु धुनत—भुजा ठोकते हैं। औध मृगराज—अयोध्या के सिंह अर्थात् श्री रामचन्द्र जी।

भावार्थ—पृथ्वी भर के राजा, जिनके ऊपर राजछत्र सुशोभित हो रहा था, जिनकी कई अक्षौहिणी सेना पृथ्वी पर छा जाती है, वे जनकपुरी में एकत्र हुए। वे बड़े बलवान, प्रतापी, सुन्दर वेष धारण किए हुए, तथा सुन्दर रूप वाले हैं। वे यहाँ पर सीता के स्वयंवर में वरण किए जाने के लिए बुलाए गए हैं। बन्दी लोग बाजे बजा-बजा कर उन राजाओं के यश का बखान करते हैं जिसे सुनकर कई राजा (उत्साह से) भुजाएँ ठोक रहे हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि इस समय जनकपुर के रहने वाले सभी स्त्री पुरुष प्रसन्न हो रहे हैं और बार-बार अयोध्या के सिंह श्री रामचन्द्र जी के मुँह की ओर देख रहे हैं।

२. नगर निसान वर बाजै--

शब्दार्थ--निसान—बाजे नगाड़े आदि। व्योम—आकाश। दुंदुभी—नगाड़े। विमान--वायुयान। सुरनारि--अप्सराएँ। सुमन—फूल। रूरे--सुन्दर। राचहीं—अनुरक्त होते हैं। पन जयो—प्रण विजयी हुआ, पूरा हुआ। तृन तोरि—अपने प्रेम-पात्र पर किसी की

कुदृष्टि न पड़ जाय इस अभिप्राय से तिनका तोड़ना। जाँचहीं—माँगती है, याचना करती है।

भावार्थ—जनकपुर में तरह तरह के सुन्दर बाजे और आकाश में नगाड़े बज रहे हैं। अप्सराएँ विमानों पर चढ़ चढ़कर गा गाकर नाच रही हैं। (जानकी जी द्वारा) श्री रामचन्द्रजी के गले में जय-माला पड़ते ही तीनों लोकों में जयजयकार होने लगा। देवता फूलों की वर्षा करने लगे और रामचन्द्र जी के सुन्दर रूप पर मोहित हो गए! राजा जनक का प्रण पूरा होगया, साथ ही सबकी मन-कामना पूर्ण हो गई। इस कारण रोम-रोम में हर्ष हो रहा है सब लोग अत्यन्त प्रसन्न हैं। सीताजी की सखियाँ साँवले शरीर वाले रामचन्द्र और गोरे शरीर वाली सीता की शोभा पर तृण तोड़ कर ईश्वर से याचना करती हैं कि यह जोड़ी युग युग जिये।

बिपुल बिसाल बिकराल—

शब्दार्थ—बिपुल—बिसाल—बहुत बड़े। बिकराल—भयंकर। करषा—क्रोध। सिला—शिला। सैल—पर्वत। साल—शालवृक्ष। ताल—तालवृक्ष। तोय-निधि—समुद्र। हरषा—हर्षित हुआ। डिगे—डगमगा गए, विचलित हो गए। दिग कुंजर—दिशाओं के हाथी। कमठ—कच्छप। कोल—बाराह, शूकर। कलमले—कलमला गए, अकुला गए। धाराधर-धारि—पर्वत समूह। धराधर—शेषनाग। धरषा—दब गया। तमकि—उत्तेजित। अटक—रोक-टोक। अमरषा—क्रोधित हुआ।

भावार्थ—बहुत बड़े और भयंकर बन्दर और भालू क्रोधित हो कर ऐसे दौड़ रहे हैं मानो साक्षात् काल ही अनेक वेष धारण कर दौड़ रहा हो। वे लोग पर्वत-खंड, शाल, ताड़ और तमाल (आबनूस) के पेड़ों को उखाड़ लाकर समुद्र को पाटते हैं, जिसे देख

कर देवताओं का समाज हर्षित हुआ। उनके पैरों के भार से दिशाओं के हाथी डगमगा गये, कच्छप और वाराह अकुला उठे पर्वत हिलने लगे और शेषनाग दब गया। (ऐसा प्रचलित है कि पृथ्वी कच्छप की पीठ पर, वाराह की थूथनी पर, तथा शेषनाग के फन पर टिकी है और प्रत्येक दिशा में एक एक हाथी उसे दबाए हुए हैं। जब बन्दर और भालू जोर से भागते हैं तो पृथ्वी हिल उठती है अतः सब काँप उठते हैं) तुलसीदास जी कहते हैं कि भालू और बन्दर तमक कर चलते हैं और रामचन्द्र जी की शपथ खाते हैं। भला बन्दरों की इस क्रोधित सेना का सामना कौन कर सकता है।

आये सुक सारन बोलाये—

शब्दार्थ—सुक-सारन—सुक और सारन नाम के दो दूत। फहम—बुद्धि, समझ जाना। करत फहम ही—याद करते ही। समाहिंगे कहाँ मही—पृथ्वी पर कहाँ अटेंगे। दससाथ—दशानन, रावण। दुरावै—छिपता है। विधि—ब्रह्मा। हरि—विष्णु। हर—शिव। रहम—दया, कृपा।

भावार्थ—रावण के बुलाने पर उसके दूत सुक और सारन आए। (जब रावण ने उनसे रामचन्द्र की सेना का हाल पूछा तो) उनकी सेना का स्मरण कर भय के मारे उनके शरीर में कँप-कँपी शुरू हो गई—रोंगटे खड़े हो गए और वे कहने लगे, "महाबलशाली बन्दर और भालू काल के समान भयानक हैं। और उनकी संख्या इतनी अधिक है कि पता नहीं वे पृथ्वी पर कहाँ समावेंगे? उनके लिए तो भूतल पर स्थान ही न मिलेगा।" रामचन्द्र जी के प्रताप को सुनकर यद्यपि रावण का मुँह भय के मारे सूख गया तथापि अपने भय के भाव को छिपा कर वह हँसा। तुलसीदास जी कहते

हैं कि रामचन्द्र जी के विरोध से ब्रह्मा, विष्णु और महेश का भी बुरा हो सकता है। रामचन्द्र जी की कृपा में ही सबकी भलाई है।

तुलसी सबल रघुबीर—

शब्दार्थ—सबल—बलवान। बालिसुत—अंगद। करेरी-सी—कड़ी सी। बखशीस—दान, इनाम। ईस—शिव जी। खोस होत—नष्ट होते हुए। हौं—मैं। तेरी सी—तेरी हो भलाई के लिए। कंगूरे—मकान की चोटियाँ। नेकु—जरा। ढेलनकी ढेरी सी—ढेलों के ढेर सी। हथेरीसी—हाथ को हथेली के समान सफाचट अर्थात् बराबर, समतल।

भावार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि बलवान रामचन्द्र जी के प्रताप से अंगद रावण को कुछ समझता ही नहीं और उसे खरी खरी बातें सुनाता है कि शिव जी का दान अर्थात् शिव जी की दी हुई यह तेरी सारी समृद्धि नष्ट हो जायगी। मैं तो तेरी ही भलाई के लिए कहता हूँ, तू क्रुद्ध क्यों हो रहा है ? (अगर तू मेरी बात मान कर रामचन्द्र जी से न मिलेगा तो) बन्दर क्रोधित हो कर तुम्हारे किले और मकानों की चोटियों पर चढ़कर उन्हें धक्का देकर इस प्रकार गिरा देंगे जिस प्रकार ढेलों की ढेरी को (बच्चे) धक्का देकर गिरा देते हैं। ऐ रावण, सुनो, मेरे स्वामी के साथ में आये हुए बन्दर यदि लंका में हाथ लगावेंगे तो तेरी सोने की लंका हथेली के समान सफाचट हो जायगी—मिट्टी में मिल जायगी।

दूषन विराध खर—

शब्दार्थ—कबंध—एक राक्षस का नाम। कालि को—कल का, थोड़े दिन का। बिसिख—बाण। नेकु—जरा। संक—भय। कुचाली—कुकर्म बीर-कर-केसरी—हाथी रूप वीर क्षत्रियों के लिए सिंह के समान। कुठार-पानि—परशुराम। बिड—दुष्ट, विट, धूर्त। तोसी—तुझ समान।

गनै घालिको—मारना किस गिनती में है अर्थात् तुझे मार डालना तो रामचन्द्र जी के बिलकुल तुच्छ बात है।

भावार्थ—श्री रामचन्द्र जी ने खर, दूषण, विराध, त्रिशिरा, तथा कबन्ध को मार दिया और बड़े भारी सप्ततालों को एक ही बाण से बींध दिया, ये सब तो उनके थोड़े ही दिनों के खेल हैं। और वीरों में श्रेष्ठ जो महाबली बाली था, जिसके बल को तू खूब जानता है, उसे एक ही बाण से वश में कर लिया, वह एक ही बाण से मारा गया। इसलिए मैं तो तेरी ही भलाई के कहता हूँ, पर तू ज़रा भी भय नहीं खाता। इससे मेरा क्या बिगड़ेगा, तू ही अपने कुकर्मों का फल पायगा। जब वीर-रूपी हाथियों के लिए सिंह-समान परशुराम जी तक रामचन्द्र जी से हार मान चुके हैं तो ऐ नीच, रामचन्द्र जी के सामने तू किस गिनती में है ? तुझे मार गिराना उनके लिए अत्यन्त साधारण बात है।

आयो आयो आयो सोई—

शब्दार्थ—सोई —वही। बहोरि—फिर। युवराज—अंगद। धौंज—दौड़ धूप। सौंज—साज, सामग्री। पोच—बुरा। गाज्यौ—गर्जा। कपिराज—बानरराज, अंगद। जातुधान—राक्षस। गाज—बिजली। बातजात—वायु पुत्र, हनुमान जी। सुरति करि—याद कर। लवा—बटेर। लुकात—छिपाता है।

भावार्थ—जब अंगद जी लंकापुरी में पहुँचे तो चारों ओर शोर मच गया कि वही बन्दर (हनुमान) फिर आगया है। कोई घर से सामान निकालने लगा, कोई इधर-उधर बदहवास दौड़ने लगा कि अब न जाने क्या होगा। योद्धा लोग सोच में पड़ गये कि यह बहुत बुरा हुआ। अंगद रामचन्द्र जी की शपथ खाकर गरजने लगा। उसकी गर्जना सुनकर राक्षस उसी प्रकार अपने कान मूँदने

लगे जिस प्रकार बिजली के कड़कने पर लोग कान मूँदते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि हनुमान जी की याद करके डर के मारे राक्षसों का मुँह सूख गया और वे इस प्रकार छिपने लगे जिस प्रकार बाज के झपटने पर लवा पक्षी छिप जाता है।

पौढ़िये लाल पालने हौं झुलावौं—

शब्दार्थ—पौढ़िये—लेटिये। हौं—मैं। मनि—मणि। खानि—खान। खुनऔं—खोद निकालूँ। तइ—उस। ताग—तागा, तार, सूत्र। गुहिबे कहँ—पिरोने के लिए। नति—न, नहीं। मृगनयनि—मृग के समान नेत्र वाली। भनित—कहती है। भली भामिनी—सद्गृहिणी, कौशल्या जी। उर—हृदय। सो—वह, उसे। पहिराय—पहनाकर। फुलावौं—प्रसन्न होऊँगी। चारु—सुन्दर।

भावार्थ—हे लाल, पालने में लेट जाओ, मैं पालना झुलाऊँगी। जिससे मैं बालविनोद-मोद की सुन्दर मणि किलकारी-रूपी खान से खोद निकालूँ अर्थात् बालविनोद का आनन्द लूटूँ। उस सुन्दर मणि को अनुराग-रूप तार में पिरोने के लिए मैं और किसी अन्य मृगनेत्री को नहीं बुलाऊँगी। [अर्थात् उस आनन्द को मैं स्वयं ही उठाऊँगी, उसमें किसी को साझी नहीं होने दूँगी] तुलसीदास जी कहते हैं कि सद्गृहिणी कौशल्या जी कहती हैं कि हे लाल, उस माला को मैं अपने हृदय में पहना कर फूली नहीं समाऊँगी। हे राम, तेरे सुन्दर चरित्रों को मिलकर गाऊँगी और चरणों में अपना चित्त लगाऊँगी अर्थात् तुझे हृदय से प्यार करूँगी।

जागिये कृपानिधान जानिराय रामचन्द्र

शब्दार्थ—जानिराय—ज्ञानिराय, ज्ञानियों में श्रेष्ठ। जननि—माता। भोर—प्रातःकाल। भयो—हो गया। राजिवलोचन—कमल के समान नेत्र वाले। वापिका—बावड़ी। मराल—हंस। बदन—मुख। मदन—

कामदेव । वारे—न्यौछावर कर दे । अरुन उदित—सूर्य उदय हो गया, पौ फट गई । विगत सर्वरी—राति बीत गई। ससांक—शशांक, चन्द्रमा । दीन—बेचारे, गरीब । मलिन—मन्द । ज्ञान-धन-प्रकाश—ज्ञान रूपी धन के से । भवविलास—सांसारिक ऐश्वर्य । आस—आशा, तृष्णा । त्रास—भय । तिमिरतोम—अंधकार समुदाय । तरनि—सूर्य । खग—पक्षी । निकर—समुदाय । श्रवन—कान । वारे—बच्चे । बिरुद—यश । कैटभारे—कैटभारि, कैटभ दैत्य के अरि, विष्णु, यहाँ राम से अभिप्राय है । रसाल—मीठे । कदम्ब—समूह ।

भावार्थ—माता कौशल्या बार बार कहती हैं कि हे कृपानिधान, ज्ञानियों में शिरोमणि श्री रामचन्द्र जी प्रातःकाल होगया है, अब जागो । हे कमल के समान विशाल नेत्र वाले, हे प्रीति रूपी बावड़ी के राजहंस, तुम्हारे कमल के समान मुख पर करोड़ों कामदेवों को न्योछावर कर दूँ । हे प्यारे, देखो सूर्य उदय हो गया है, रात, बीत गई है, चन्द्रमा की किरणें निस्तेज हो गई हैं, बेचारे दीपों और तारों के समूह की द्युति इस प्रकार मलिन हो गई है जैसे ज्ञान-रूपी धन के प्रकाश से सांसारिक ऐश्वर्य की चमक दमक नष्ट हो गई हो या आशा (तृष्णा) और भय-रूपी अन्धकार ज्ञान रूपी सूर्य के तेज से जल गया हो । हे मेरे प्राणधन, हे मेरे बच्चे, जरा कान लगा कर सुनो, यह चहचहाता पक्षी वृन्द कैसा मधुर कलरव कर रहा है; पक्षी कितना मीठा गा रहे हैं । मानों वेद, बन्दी (स्तुति करने वाले) मुनि समुदाय, सूत और मागधादि (भाट और चारण इत्यादि) भगवान् विष्णु के अवतार तुम्हारा यश बखान करते हुए, जय-जयकार कर रहे हों । माता के ऐसे मीठे वचन सुनकर अत्यन्त दयालु श्री रामचन्द्र जी जाग उठे मानों सारे सांसारिक दुःख और जंजाल का समूह टल गया हो—दूर

हो गया हो। तुलसीदास जी कहते हैं कि भगवान् राम के मुख-कमल के दर्शन कर अत्यन्त आनन्द हुआ और भ्रम का फंदा छूट गया है, और दुःख द्वन्द मन्द पड़ गया।

जननी निरखत बाल धनुहिआँ—

शब्दार्थ—धनुहिआँ—छोटा सा धनुष। पनहिआँ—जूतियाँ। सकारे—प्रातःकाल। बड़बार—देरी। भई—हुई। जेइये—कलेवा करिये। सिखी सी—बाण सी।

भावार्थ—[यह वर्णन उस समय का है जब रामचन्द्र जी बन को चले गये थे, और माता कौशल्या उनकी चीज़ों को देख देख करके दुःख पारही थीं] माता कौशल्या बालक श्री रामचन्द्र जी के छोटे से धनुष को स्नेह पूर्ण दृष्टि से देख रही हैं, और रामचन्द्र जी की सुन्दर जूतियों को स्नेहाधिक्य के कारण बार बार आँखों से और हृदय से लगाती हैं। कभी पहले की भाँति प्रातःकाल ही प्रियवचन कहकर रामचन्द्र जी को जाकर जगाने लगती हैं कि हे तात, उठो, माता तुम्हारे मुख की बलैयाँ लेती है, देखो तुम्हारे छोटे भाई और बाल-सखा सब तुम्हारे दर्शन के लिए द्वार पर उपस्थित हो गए हैं। कभी कहती हैं कि देखो, भैया राज-दरबार जाने में देरी हो गई, अब उठ कर राजा के पास जाओ। अपने भाइयों को बुला-कर जो चाहो सो कलेवा कर लो, माता तुम पर न्योछावर होती है। फिर कभी राम के वन-गमन को स्मरण कर चित्र-लिखी सी रह जाती हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि ऐसे समय (जब सचमुच राम अयोध्या में नहीं हैं तब) प्रीति की बातें उन्हें बाण सी लगती हैं। उनके पुत्र-विरह-दुःख को दुगना कर देती हैं।

बैठी सगुन मनावति माता—

शब्दार्थ—सगुण—शकुन। फुरि—सच्ची। गनक—ज्योतिषी। मीन मछली।

भावार्थ—माता कौशल्या रामचन्द्र जी के घर लौट आने का शकुन मना रही हैं और कहती हैं कि हे कौवे सच सच-बता मेरे बच्चे कब सकुशल घर लौटेंगे? तेरे दिए हुए सन्देशे के अनुसार जब मैं सीता-सहित राम लक्ष्मण को नेत्र भर देखूँगी और उन्हें हृदय से लगा पाऊँगी तो दोना भर कर तुझे दूध-भात दूँगी और तेरी चोंच सोने से मढ़वा दूँगी। रामचन्द्र जी के लौटने की अवधि निकट जान कर माता कौशल्या हृदय में अत्यधिक आतुर होकर अकुला रही है। जब उनसे न रहा गया तो उन्होंने ज्योतिषी को बुलवा भेजा। ज्योतिषी के पैरों पड़-कर कौशल्या मीठी वाणी में राम-लक्ष्मण के आने के विषय में पूछ रही हैं। इसी अवसर पर भरत जी के पास से कोई रामचन्द्र जी के आने का समाचार लाया है। प्रभु के आने का समाचार सुनकर कौशल्या जी के जी में इस प्रकार जी आ गया जैसे मरती हुई मछली को जल मिल गया हो।

सूचना—ये पद 'विनय पत्रिका' से नहीं लिए गए हैं वरन् 'गीतावली' से लिए गए हैं।

मोकह झूँठहिं दोष लगावहिं—

शब्दार्थ—बानि—आदत। पर गृह की—दूसरे के घर आने जाने की। उलहनों—उपालंभ। रुवाइ—रुलाकर। मिस—बहाना। तऊ न उबरन पावहीं—तो भी पिंड नहीं छोड़ती हैं। शिर धरहिं आन के—दूसरे के मत्थे मढ़ती हैं। विरंचि—ब्रह्मा। हरावहि—हरा देती हैं। टेव—आदत। हलधर—बलराम। अन्याउ—शरारत, उपद्रव। बदन दुरावहिं—मुख छिपाती हैं।

भावार्थ—[श्रीकृष्ण अपनी माता यशोदा से अपने पर आरोपित किए गए दोषों की सफाई देते हुए कहते हैं] माँ, यह ग्वालिनियाँ मुझ पर सदा ही झूठा दोष लगाती हैं। सच बात तो यह है कि इन्हें दूसरे के घर जाने की आदत पड़ी है इसलिए ये दूसरे के घर जाने के लिए नाना प्रकार की युक्तियाँ (तरकीबें) निकाल लेती हैं। इन के भय के मारे मैंने खेलना भी छोड़ दिया है, पर फिर भी मैं इनसे छुटकारा नहीं पाता। ये स्वयं दही दूध के बरतन फोड़कर और उससे हाथ लपेट कर तेरे पास उलाहना देने चली आती हैं। कभी जब इन्हें कोई बहाना नहीं मिलता तब बच्चे को रुलाकर और उसका हाथ पकड़ कर इसी बहाने से तेरे पास दौड़ी चली आती हैं। ये ऐसी हैं कि आप कसूर करेंगी और दूसरे के मत्थे मढ़ देंगी। और बात-बनाने में तो ये ब्रह्मा को भी पराजित कर देंगी। यदि तुझे मेरी आदत जाननी है तो बलदेव से पूछ ले जो हर समय मेरे साथ खेलता है। मेरी तो ऐसी आदत है कि जो लड़के किसी से शरारत करते हैं वे तो मुझे अच्छे ही नहीं लगते; तो भला, मैं स्वयं कैसे शरारत कर सकता हूँ। कोई भला आदमी इस बात को मानने के लिए तय्यार नहीं होगा। श्रीकृष्ण की इस प्रकार की वचन-चातुरी सुन-सुन कर ग्वालिनियाँ संकोच और लज्जा से मुँह छिपा लेती हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि बाल-गोपाल श्रीकृष्ण जी की सुन्दर केलि-कीर्ति को मुनिजन गाते हैं।

२. अबहिं उरहनौ दै गई—

शब्दार्थ—सौं—शपथ। टेक—विश्वास। लरन की—लड़ाकी। सकुच बेचेसि खाई—लज्जा बेच कर खा गई, बड़ी बेशर्म, निर्लज्ज। घने—बहुत सारे। हौं—मैं। अन्याई—शरारती। मुँह लाए—मुँह

लगाए। मूर्डहिं चढ़ि—सिर पर चढ़ गईं। अहिरिनि—ग्वालिनी। सूधी—सीधी साधी।

भावार्थ—श्रीकृष्ण यशोदाजी से कहते हैं कि माता जी, देखिए अभी यह उलहना देकर गई थी और अभी फिर आ गई है। माताजी, आपकी शपथ मैं सच कहता हूँ, मेरी बात पर विश्वास कीजिए। यह तो बड़ी लड़ाकी है, लज्जा और शर्म तो इसे कुछ है ही नहीं, उसे तो यह बेच कर खा गई है। जरा, आप ही बतावें कि इस ब्रज में जब बहुत सारे लड़के हैं तो क्या उन में मैं ही एक शरारती हूँ ? और शरारत करते ही नहीं ? सच तो यह है कि तुझे सीधी-सादी जान कर और तेरे मुँह लगाने से अन्त में ये ग्वालिनियाँ सिर पर चढ़ गई हैं। तू इन्हें कभी फटकारती ही नहीं इस लिए इन्हें शिकायत करने की आदत पड़ गई है।

छाड़ो मेरे ललित ललन लरिकाई—

शब्दार्थ—ललित—सुन्दर मनोहर। ललन—लला, पुत्र। लरिकाई—लड़कपन। दुलहिया—दुलहिन, वधू। सुहाई—सुन्दर, सुहावनी। उबटि—उबटन, उपवर्तन। बोलि दे भई—बतादे भाई। बड़िबार—विलंब। नयन मीचि—नेत्र मूँद कर। पौढ़ि—लेटे। झँगुली—अँगरखी। लखि—देखकर। आतुरताई—उतावली। उर—हृदय।

भावार्थ—यशोदा जी कहती हैं कि हे मेरे लला, अब अपना लड़कपन छोड़ दे। देखो न तेरे ब्याह की हमने चर्चा चलाई है और कल वे तुझे देखने आवेंगे। तेरी चोरी की बात सुन कर सास-ससुर डरेंगे और नई दुलहिन यह सुनकर हँसेगी। इसलिए अब उबटन लगा कर स्नान कर लो, मैं तुम्हारी चोटी गूँथ दूँगी और सुन्दर गुँथी हुई चोटी देख कर वे कहेंगे कि वर तो बड़ा अच्छा है और तेरी बड़ाई करेंगे। माता का कहा करके श्रीकृष्ण

पूछते हैं 'माता जी, बता दीजिए वे कल ही आजावेंगे कि अभी उनके आने में विलंब है।" माता ने कहा, "हाँ कल ही आवेंगे। हे तात, अब जल्दी सो जाओ।" माता की बात सुन कर श्री कृष्ण आँखें बन्द कर बिछौने पर लेट गये, फिर उठ कर कहने लगे "माता जी, सवेरा हो गया मुझे जल्दी से अँगरखी पहनने को दीजिये।" श्री कृष्ण की व्याह के लिए उतावली देख कर यशोदा जी बड़ी प्रसन्न हुईं पर इतने में एक ग्वालिन को अपनी आकुलता एवं उत्सुकता पर हँसते हुए जान कर श्री कृष्ण लज्जित हो कर माता के हृदय से लग गये।

हरि को ललित बदन निहारु—

शब्दार्थ—ललित—सुन्दर। बदन—मुख। निहारु—देख। निपटहीं—बिलकुल। डाटती—डाँट-फटकार दिखाती है। निठुर ज्यों—निर्दयी जैसी। लकुट—लट्ठी। कर ते डारु—हाथ से फेंक दे। मंजु—मनोहर। जलकन—आँसू। चुवत—टपकते हैं। लोचन—नेत्र। चारु—सुन्दर। श्याम सारस—नीला कमल। श्रवत—बहा रहा है, टपका रहा है। सुधा—अमृत। सिंगारु—शृंगार। उर—छाती, वक्षस्थल। दधिबुन्द—दही की बून्द। अपनपो—अपने तईं, अपने को। वारु—न्योछावर कर दूँ। मरकत—नीलमणि। सिखर—शिखर, चोटी। विषद—बहुत। लसत—शोभा देता है। तुषारु—पाला, हिम। सतर भौंहें—टेढ़ी भौंह। महरि—यशोदा। रिस—क्रोध। निरखि—देख कर।

भावार्थ—जिस समय यशोदाजी हाथ में छड़ी लिए हुए श्रीकृष्ण को डाँट-डपट दिखा रही थीं उस समय कोई वृद्धा ग्वालिन आकर कहती है कि तू बिलकुल निर्दयी की भाँति इस सुन्दर बच्चे को डाँट रही है! अरी, हाथ से लट्ठी छोड़ दे और जरा इसके मुख की ओर तो देख। बेचारा अपने सुन्दर नेत्रों से

अंजन-मिश्रित अश्रुबिंदु टप-टप टपका रहा है। उसके आँसुओं को देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानो श्याम कमल के द्वारा चन्द्रमा अमृत का सौन्दर्य बहा रहा हो। उसके वक्षस्थल पर लगा हुआ सुन्दर दही का बिन्दु देख कर मैं अपने को वार देती हूँ। वह ऐसा जान पड़ता है मानो मरकत (नील) मणियों के पर्वत-शिखर पर पड़ा हुआ बहुत सा बर्फ शोभित हो रहा हो। हे यशोदा, जरा अपने मन में तो विचार कर, तू ऐसे भोले-भाले बच्चे पर अपनी भौंहें तानती है क्रोध करती है। तुलसीदास जी कहते हैं कि ऐसे मनमोहन श्रीकृष्ण को देख कर गुस्सा रह कैसे सकता है ?

गावैं विबुध विमल बर बानी—

शब्दार्थ—विबुध—देवता। विमल—निर्मल। पाख—पक्ष। नखत—नक्षत्र। लगन—लग्न। हिय—हृदय। हुलसानी—प्रसन्न हो गया। सुमन—फूल। ज्यों—जिस तरह। हुलास—प्रसन्नता। नरेसहि—राजा दशरथ को। जनपद—प्रजा, देश, मुल्क। अमर—देवता। लंकसंक अकुलानी—लंका सशंकित हो कर अकुलाई। मुनि-वनिता—मुनि-पत्नियाँ। सुहासिनी—सुंदर हँसी हँसने वाली। सहस भाँति—हज़ार तरह से। अघाय—तृप्त। जाचक—याचक, भिखारी। भूप-भामिनी—राज-रानियाँ। सोहिलो—सोहर, पुत्र जन्म में मंगल गीत। दुनी—संसार दुनिया। सिहानी—हर्षित हुई, शान्त हुई। हरि-बिरंचि-हर पुर—वैकुंठ, ब्रह्मलोक और शिवपुरी। कुलि—संपूर्ण। कोसलपुर—अयोध्या। लुभानि—आसक्त हो गईं। अवनि—पृथ्वी। कोखि जुड़ानि—छाती ठंढी हो गई। सराहहिं—प्रशंसा करती हैं। उमा—पार्वती। रमा—लक्ष्मी। ब्रह्मानी—ब्रह्माणी, ब्रह्मा की पत्नी। न जिनहि सोहानो—जिन्हें अच्छा नहीं लगा। कोहानी—क्रोधित हो गईं, अप्रसन्न हो गईं।

छठी—छट्ठी, एक संस्कार विशेष, जो लड़के के जन्म के छटवें दिन होता है। बारहौ—बरही नामक एक संस्कार-विशेष, जो बच्चे के जन्म से १२वें दिन होता है। इस दिन में कुल-व्यवहार के अनुसार अनेक प्रकार की पूजा होती है और बहुतों के यहाँ इसी दिन नामकरण भी होता है। सुकृत-सुमन—पुण्य रूपी फूल। तिल-मोद—मोद रूपी तिल। बासि—सुगन्धित कर। विधि—ब्रह्मा। जतन यंत्र—यत्न रूपी मशीन या कोल्हू। भरि घाणी—घाणी भर कर। सुख सनेह—सुख रूपी तेल। खरि—खली, खल। खलेल—खली आदि का वह भाग जो खलेल में रह जाता है और छान कर निकाला जाता है। थिर थानी—नितेर कर। अनुदिन—प्रतिदिन। उछाह—उत्साह।

भावार्थ—करोड़ों लोकों के कल्याण-कारी भगवान् को रानी कौशल्या ने जब जन्म दिया तो उस समय देवता लोग अपनी निर्मल वाणी से उनका यशोगान करने लगे ॥१॥

भगवान् के जन्म का महीना, पत्र, तिथि, वार, नक्षत्र, ग्रह, योग, लग्न सब शुभ और कल्याणकारी थे। उस समय जल थल के समस्त प्राणी और साधु जन प्रसन्न हो रहे थे और दसों दिशाओं के हृदय भी आनन्द से फूले नहीं समाते थे अर्थात् सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा रहा था ॥२॥

आकाश से फूल बरस रहे थे, नगर में आनन्द के बाजे बज रहे थे, सच तो यह है कि उस आनन्द का वाणी द्वारा वर्णन ही नहीं हो सकता, वह वर्णनानीत है। रनवास में जो प्रसन्नता राजा दशरथ को हो रही है वही प्रजा में और राजधानी में भी घर घर हो रही है ॥३॥

उस काल, देवता, नाग, मुनि और मनुष्य लोग सपरिवार शोक, विषाद और ग्लानि से रहित हो गए। परन्तु उसी समय

राक्षस-राज रावण की लंका अपने दुर्भाग्य की आशंका से भयभीत हो कर अकुलाने लगी ।४।।

पुत्र-जन्म पर राजा दशरथ ने देवता, पितर, गुरु और ब्राह्मणों की पूजा कर उन्हें उनकी इच्छानुसार दान दिया। इसी प्रकार मुनि-पत्नियों, सुहासिनी नगर की नारियों को भी हज़ार तरह से सम्मानित किया।

अत्यधिक दान पाकर याचक लोग दानी बन गए और इच्छित दान पाने से तृप्त हो कर राज-प्रासादों से विदा होते समय वे आशीर्वाद देते हैं कि हे महेश-भवानी, आप कैकेयी और सुमित्रा को भी इसी तरह प्रसन्न करें। वे भी ऐसे सुन्दर बालकों को जन्म देकर प्रसन्न-बदन हों ।।६।।

शिव की अपार दया से दूसरे ही दिन दूसरी राज-रानियाँ—सुमित्रा और कैकेयी—भी कौशल्या की भाँति ही मंगल-खानि हुईं—अर्थात् उन्होंने भी सुन्दर बालकों को जन्म दिया। सर्वत्र पुत्र-जन्म के मांगलिक गीत गाए गए—जहाँ देखो वहाँ मंगल-उत्सव हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है मानो सारी सृष्टि ही मांगलिक गीतों से सन गई हैं ।।७।।

राजकुमारों के जन्म से अयोध्या में अत्यधिक सुख बढ़ा, लोग नाचने और गाने लगे; परस्पर बधाई देने और लेने लगे, वस्त्र पहनने और पहनाने लगे। इस प्रकार प्रजा-जन आनन्द से तृप्त हो गए ।।८।।

अयोध्या के आनन्द उत्सव को देख कर सारी दुनियाँ आनन्दित हो उठी। विष्णुलोक, ब्रह्मलोक और शिवपुरी की संपूर्ण शोभा अवधपुरी की शोभा पर मोहित हो गई ।।९।।

पृथ्वी पर आनन्द बरस रहा है, राज-रानियों की (सौभाग्य, पति सुख से) माँग और (पुत्रोत्पत्ति से) कोख ठंढी हो गई। पार्वती जी, लक्ष्मी और ब्रह्माणी राज-रानियों की सराहना करती हुई आशीर्वाद दे रही हैं ॥१०॥

राजा दशरथ का अत्यधिक बढ़ा हुआ ऐश्वर्य-विलास, जिन्हें अच्छा नहीं लगा, उनकी कीर्ति, कुशलता, वैभव, विजय और ऋद्धि-सिद्धि सब कुछ उनसे रूठ गई ॥११॥

लौकिक और वैदिक विधि के अनुसार विधि विधान से ज्ञानी गुरु ने उन सब के छठी और बरही नामक संस्कार संपन्न करके उनके राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ऐसे सुन्दर नाम रक्खे ॥१२॥

ब्रह्मा रूपी तेली ने मोद रूपी तिलों को पुण्य-रूपी फूलों से सुगन्धित करके, तिलों की उस घाणी को यत्न-रूपी यंत्र (कोल्हू) में पेर कर तथा उसकी खली एवं तेल के खलेल को नितेर कर उससे सुख-रूपी तेल निकाल कर राजा दशरथ को दे दिया ॥१३॥

प्रतिदिन राजा दशरथ के अभ्युदय, उत्साह और उमंग की चर्चा प्रत्येक मनुष्य के मुँह पर है और घर-घर उसकी कहानी कही जा रही है। तुलसीदास जी कहते हैं कि उस समाज—के आनंदोत्सव को हृदय में धारण कर मैं राम-जन्म के यश को गाता हूँ ॥१४॥

ह्वै हौ लाल कबहिं बड़े बलि मैया—

शब्दार्थ—बलि मैया—माता बलैया लेती है। भावते—सुहावते। रिपुदवन—शत्रुघ्न। चारु—सुन्दर। चारयो भैया—चारों भाई। बिरचि—सजाकर। बनैहौं—संवारूँगी। निछावरि करि—रुपये आदि वार कर। बारने जैहौं—न्योछावर हो जाऊँगी। छगन-मगन—छोटे छोटे बच्चे आनन्दित होकर। धैहौ—दौड़ोगे। कलबल वचन—खंडित वचन,

अस्पष्ट वचन जिनका अर्थ समझ में न आवे। मंजुल—सुन्दर। पुरजन—नगर के लोग। सचिव—मंत्री। राउ—राजा। सखा—मित्र। लोचन-लाहु—नेत्रों का लाभ। मनोरथ-बेली—अभिलाषा, संकल्प-विकल्प-रूपी बेल। लटू—लट्टू, प्राप्ति के लिए उत्कंठित। प्रेम-पियासी—प्रेम की प्यासी।

भावार्थ—हे लला, माता तुम्हारी बलैया लेती है। बताओ न राम-लक्ष्मण, सुन्दर सुहावने भरत और शत्रुघ्न तुम चारों भाई कब बड़े होगे ॥१॥

और मैं कब छोटे-छोटे आभूषण और मनोहर वस्त्र तुम्हारे अंगों में सजाकर सँवारूँगी? कब तुम्हारी शोभा देख कर तुम पर धनादि वार कर और तुम्हें छाती से लगाकर तुम पर न्योछावर होऊँगी ॥२॥

हे मेरे लाल, कब तुम आनन्द-मग्न होकर आँगन में दूसरे भाइयों के साथ मिल कर खेलोगे और कब ठुमुक-ठुमुक चलकर दौड़ोगे? कब सुन्दर खंडित तोतले वचनों से मुझे 'माँ' 'माँ' कह कर बुलाओगे ॥३॥

कब नगर के लोग, मंत्री, राजा रानी, सेवक, मित्र और सहेलियाँ अपनी सुन्दर मनोरथ-रूपी बेल को सफल देख कर अपने नेत्रों का लाभ उठावेंगी? अर्थात् तुम्हारे दर्शन से अपने को कृतार्थ समझेंगी ॥४॥

जिस सुख की लालसा पर शिवजी लट्टू हैं, जिसे प्राप्त करने के लिए शुक-सनकादि मुनि लोग उदासी होकर फिरते हैं। तुलसी-दास जी कहते हैं कि देखो, उसी सुख-समुद्र में (बाल-क्रीड़ा रूपी सुख-समुद्र में) प्रेम की प्यासी कौशल्या आज निमग्न हो रही है अर्थात् जिस बाल-क्रीड़ा का आनन्द उठाने के लिए शिवादि

देवता उत्कंठित रहते हैं और हमेशा तरसते रहते हैं पर उन्हें नसीब नहीं होता, उस बाल-क्रीड़ा का कौशल्या बिना प्रयास के ही आनन्द उठा रही हैं ॥५॥

पगनि कब चलिहौ चारौ भैया—

शब्दार्थ—पगनि—पैरों से। सुवन—पुत्रों। निकैया—सुंदरता। दलि त्रन—तिनका तोड़कर, जिससे नज़र न लगने पावे। छलकिहै—उमड़ेगी। बिधु—चंद्रमा। जुन्हैया—चाँदनी। लाहु—लाभ। अनायास—बिना प्रयास। सरित—नदी। अन्हवैया—नहाने वाले।

भावार्थ—माता सुमित्रा प्रेम-पुलकित होकर और चारों पुत्रों को छाती से लगा कर कहती है कि तुम चारों भाई पैरों से कब चलने फिरने लगोगे? ॥१॥

तुम्हारे सुन्दर शरीर पर छोटे छोटे वस्त्रालंकार सजे हुए तथा तुम्हारे नखसिख (संपूर्ण शरीर) की सुन्दरता देख कर, कब माताएँ तुम पर अपने प्राणों को वार कर, तिनका तोड़कर, तुम्हारी बलैया लेंगी? ॥२॥

तुम्हारी किलकारियों से, ठुमुक ठुमुक कर चलने से, भोली चितवन से तथा दौड़ कर माता से लिपट जाने की मनोहरता से एवं मणिमय खंभों में तुम्हारे स्वरूप के प्रतिबिंब की झलक से आँगन में कब छवि छलकने लगेगी ॥३॥

तुम्हारे सुन्दर मोदप्रद बालविनोद-रूप चन्द्रमा की बाल-क्रीड़ा-रूपी ज्योत्स्ना देख कर राजा का पुण्य-रूपी समुद्र कब तरंगित हो उठेगा? और कब इस प्रसन्नता से घर-घर आनन्द के बाजे बजने लगेंगे ॥४॥

तमाम सुख और पुण्य के पात्र हमारे नेत्र कब तुम्हारी बाल-क्रीड़ा के सुख का लाभ उठावेंगे? और कब, तुम्हारे तोतले

वचनों को सुनकर बिना प्रयास के ही हम अपने जन्म का फल पावेंगी ॥५॥

कब, भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण के चरित्र-रूपी नदी में स्नान कर सकेंगी ? तुलसीदास जी कहते हैं अयोध्या-वासी लोग रामचन्द्र जी को पहला जैसा आज भी समझते हैं ॥६॥

चुपरि उबटि अन्हवाइ कै—

शब्दार्थ—चुपरि उबटि—तेल मल कर और उबटन लगा कर। आँजे—अंजित किए। चिररुचि—बहुत ही सुन्दर। गोरोचन—पीले रंग का एक सुगंधित द्रव्य जो गौ के पित्त में से निकलता है। मसिबिंदु—काला बिंदु, नज़र न लगने के विचार से लगाया जाता है। बारे बारे बार—छोटे छोटे केश। बिलसत—शोभित हैं। हेरि हरै हियो है—देख कर मन हर लेते हैं। लालति—प्यार करती है। सुकृत—पुण्य। उपवियो है—उदय हुआ है। परिजन—कुटुंबी लोग। पुरजन—नगर के लोग। पेखि पेखि—देख देख कर। लोहित—अरुण, लाल। जिय जियो है—हृदय में प्राण धारण किए हुए हैं। बालकेलि—बाल-क्रीड़ा। बातबस—वार्तालाप के समय। झलक—शोभा। झलमलत—जगमगाती है। दीयटि—दीवट, दीपक रखने का स्टैंड। सानुज—भाइयों सहित। सुजनन—चतुर लोग, सज्जन वृन्द। जनम लाहु—जन्म का लाभ।

भावार्थ—माता सुमित्रा ने रामचन्द्र जी के उबटन लगा कर स्नान करवाया, नेत्रों में अंजन लगाया, सुन्दर गोरोचन का तिलक दिया, माथे पर नज़र न लगने के लिए अनूठी काली बिन्दी लगाई, इससे उनकी शोभा और अधिक बढ़ गई। श्रीरामचन्द्र के सिर पर छोटे छोटे बाल शोभित हो रहे हैं जिनके देखने से ही मन हरा होजाता है। सुमित्रा को आनन्द पूर्वक बालकों को गोद में लेकर दुलार करते देख देवता लोग कहते हैं कि आज सबका पुण्य उदय

हुआ है। माता-पिता, प्यारे कुटुंबी लोग और नगर के लोग पुण्यों के समूह श्रीराम को देख कर प्रेम-रस का पान करते हैं। सुन्दर लाल कमल के समान छोटे छोटे चरणों की ठुमक-ठुमक चलने की चाल को देख कर ही सुकवि तुलसीदास का हृदय प्राण धारण किए हुए है अर्थात् उसी से जीवित है। बाल-क्रीड़ा करते तथा मीठी-मीठी तोतली बातें करते समय उनके मुख की शोभा इस प्रकार जगमगा रही है मानो शोभा के दीवट में रूप का दीपक बल रहा हो। भाइयों सहित, बालक राम के सुन्दर चरित्र गा और आदर पूर्वक सुनकर सज्जन पुरुषों ने अपने जन्म का लाभ उठा लिया है। तुलसीदास जी कहते हैं कि चौदह भुवनों में राजा दशरथ को छोड़कर, ऐसे सुख के योग्य (इस प्रकार की बाल-क्रीड़ा के सुख के योग्य) ब्रह्मा ने किसी दूसरे को बनाया ही नहीं। अर्थात् इस प्रकार का सुख राजा दशरथ के ही भाग्य में है दूसरे को नसीब नहीं हो सकता है ॥१०॥

राम-सिसु गोद महा मोद—

शब्दार्थ—मेढ़ी—आगे के बालों को दोनों ओर गूँथ कर बीच की चोटी से बाँध देते हैं, जिसे मेढ़ी कहते हैं, तीन लड़ों की चोटी। ठए हैं—पहनाए हैं। चुचुकारी—पुचकार कर। बए हैं—बोए हैं। जरठ—वृद्धा, बूढ़ी। जठेरिन्ह—बड़ी। डिंभ—बालक।

भावार्थ—राजा दशरथ ने बहुत प्रसन्न होकर रामचन्द्र जी को अपनी गोद में उठाया, इसी प्रकार रानी कौशल्या ने लपक कर बड़े स्नेहपूर्वक लक्ष्मण को अपनी गोदी में लिया, सुमित्रा ने भरत को और कैकेयी ने शत्रुघ्न को अपनी गोदी में उठा लिया। सब के तन प्रेम से पुलकित हो रहे हैं और सब ही प्रसन्न मन हैं। चारों पुत्रों के केश-पाश पर सोने और मणियों से खचित लटकन तथा

अंग-अंग पर छोटे छोटे आभूषण पहनाए हुए हैं। सब उन्हें स्नेह से पुचकार कर तथा प्यार कर और चूम कर उन्हें अपनी छाती से लगाते हैं। उन्होंने जैसे बीज बोये हैं वैसा ही फल पा रहे हैं। अर्थात् राजा दशरथ और उस की रानियों ने पुण्य के बीज बोए थे इसी से उन्हें आनन्द प्राप्त हुआ है। आकाश में देवता लोग बादलों के पर्दे की ओट से यह खेल देख कर फूलों की वर्षा करते और स्नेह-सिक्त समयानुकूल प्रेम पूर्ण वचन कहते हैं कि मानों ब्रह्मा ने अपनी सारी आयु में ऐसे सुन्दर माता-पिता, पुत्र, प्रियजन, और कुटुंबी-जन ये ही बनाए हैं। बड़े वृद्ध स्त्री पुरुष यह आशीर्वाद दे रहे हैं कि तुम चारों 'अजर अमर होओ,' 'शिवजी तथा विष्णु भगवान् तुम्हारी रक्षा करें।" तुलसीदास जी कहते हैं कि जो भगवान् राम के बाल-रूप के प्रेमरंग में रँग गए हैं उनके भाग्य ही सराहनीय एवं प्रशंसनीय हैं ॥११॥

आँगन फिरत घुटुरुवनि धाए—

शब्दार्थ—घुटुरुवनि धाए—घुटनों के बल चलते हैं। नील-जलद-तनु-स्याम—नीले बादल के समान साँवले शरीर वाले। निरख—देख कर। बंधुक-सुमन-अरुन—लाल रंग के दुपहरिया के फूल। प्रमुख—प्रधान। नीड़—घोंसले। कटि—कमर। मेखला—करधनी। उर—वक्षस्थल। श्रीवत्स—विष्णु के वक्षस्थल पर का एक चिह्न जो भृगु के पाद-प्रहार का चिह्न माना जाता है। हरिनख—सिंह का नाखून, जिसे लोग नज़र न लगने के भय से बच्चे के गले में पहना देते हैं। हेम—स्वर्ण, सोना। सुभग—सुन्दर। चिबुक—ठोढ़ी। द्विज—दाँत। अधर—नीचे के ओष्ठ। स्रवन—कान। लोचन—नेत्र। जुगन—युगल, दो। जलजाए—कमल। चिकुर—बाल। दोउ गुरु—वृहस्पति और शुक्र। सनि—शनिश्चर। कुज—मंगल। ससिहि—चन्द्रमा को। तम—

अन्धकार । गन—समुदाय । पटपीत—पीतांबर । जलद—बादल । उडुगन—तारे । तडित—बिजली । मार निकर—कामदेव के समुदाय । बिधि—ब्रह्मा । दर—शंख, कंबु ।

भावार्थ—आँगन में घुटनों के बल चलते हुए नीले बादल के समान साँवले शरीर वाले बालक राम के मुख को देख कर माता कौशल्या ने उन्हें अपने निकट बुलाया ॥१॥

श्रीरामचन्द्र जी के दोपहरिया के फूल के समान लाल चरण-कमलों पर अंकुश आदि प्रमुख चिह्न बने हुए हैं, ऐसे चरण-कमलों पर बँधी हुई पैजनियाँ ऐसी भली प्रतीत होती हैं जैसे मानों मुनिवरों के हाथों से रचित घोंसलों में रहने वाले कबूतरों के लाल पैरों पर बँधे हुए रुनझुन करने वाले घुँघरु हों। (कबूतर के पैर बड़े सुन्दर होते हैं, उन की उपमा तुलसीदास जी ने खूब दी है, वे लाल होते हैं, अंकुशाकार होते हैं तथा मुनि लोग अपने पालतू कबूतरों के पैरों पर घुँघरु भी बाँध देते हैं जिससे उनके ठुमक-ठुमक चलने पर बजते हुए बड़े सुन्दर लगते हैं। यहाँ श्री राम के चरण भी लाल हैं, अंकुश के चिह्न वाले हैं तथा उन पर भी घुँघरु बँधे हुए हैं और चाल में भी कपोत जैसे ही हैं) ॥२॥

श्री रामचन्द्र जी की कटि में करधनी, शंख के समान कंठ में हार तथा सुन्दर बाँहों में आभूषण पहनाए हुए हैं। उनके वक्ष-स्थल पर भृगु के चरण-प्रहार का चिह्न, सिंहनख तथा सोने के हार के बीच में जड़े हुए मनोहर मणि-माणिक्य शोभित हो रहे हैं ॥३॥

श्री रामचन्द्र जी की मनोहर ठोढ़ी, सुन्दर दँतुलियाँ, ओष्ठ, नासिका, कान और कपोल मुझे बहुत ही प्रिय लगते हैं। उनकी

भौंहें बड़ी सुन्दर हैं तथा करुणा-रस पूर्ण नेत्र ऐसे मालूम होते हैं मानों दो कमल खिले हुए हों ॥४॥

श्री रामचन्द्र जी के विशाल मस्तक पर सुन्दर लटकन विराज रहा है तथा मुख पर बालपन के सुन्दर घुँघराले बाल बिखरे हुए ऐसे प्रतीत होते हैं, मानों देवताओं और दैत्यों दोनों के गुरु—बृहस्पति और शुक्र तथा शनि और मंगल को आगे करके अन्धकार का समूह चन्द्रमा से मिलने आया हो। (यहाँ लटकन में जो सुवर्ण है, वह बृहस्पति है, हीरा शुक्र है, लाल मंगल है और नील मणि शनि है, उन्हें आगे कर केशकलाप रूपी अंधकार-समूह मुख रूपी चन्द्रमा से मिलने आया है) ॥५॥

जब माता ने श्रीराम को पीतांबर ओढ़ाया तब उसे देख कर एक अद्भुत उपमा सूझी। मानो काले बादलों पर चमकते हुए तारों को देख बिजली अपनी स्वाभाविक चंचलता को छोड़ कर उनके ऊपर छा गई हो। [श्रीराम का शरीर और बाल हुए काले बादल, विभिन्न मणियों का बना हुआ लटकन हुआ उन पर चमकते हुए तारे तथा पीतांबर हुई बिजली] ॥६॥

अथवा काम समुदाय अपने छवि समूह को ले ले कर मानो उनके अंग अंग पर छा गया हो। तुलसीदास जी कहते हैं कि रामचन्द्र जी के रूप गुण वर्णन करने में मैं भी समर्थ हो सकता यदि वे रूप-गुण ब्रह्मा के बनाये होते पर राम तो स्वयंभू हैं।

जो हौं अब अनुसासन पावौं—

शब्दार्थ—अनुसासन = आज्ञा। हौं—मैं। चैल—कपड़ा। आनि सुधा—अमृत लाकर। नावौं—झुकाऊँ। व्यालावली—सर्प-समुदाय। भुवन—लोक। भानु—सूर्य। बाहिरो—बाहर करके। तावौं—ताना—

ढक्कन चिपका कर बरतन का मुँह बंद करना। बिबुध-बैद—अश्विनी कुमार। बरबस—ज़बर्दस्ती। अनौं धरि—पृथ्वी पर ले जाऊँ। अनुग—अनुगामी, अनुचर, सेवक। (मूल पुस्तक में 'अनुज' की जगह 'अनुग' पाठ चाहिए)। मीच—मृत्यु। नीच—तुच्छ। मूषक—चूहा। पाप बहावौं—पाप काट दूँ। नेक—ज़रा, तनिक। विलंब—देर। आयसु—आज्ञा। मन भावौं—मन को अच्छा लगूँ।

भावार्थ—लंका के युद्ध में जब मेघनाद की शक्ति से लक्ष्मण मूर्च्छित पड़े थे, और रामचन्द्र विलाप कर रहे थे, तब हनुमान जी कहते हैं—यदि मैं आपकी आज्ञा पाऊँ तो मैं चन्द्रमा को वस्त्र की भाँति निचोड़ कर और उसमें से अमृत लाकर (चन्द्रमा को सुधाकर कहते हैं और उसमें से सुधा निचुड़ती रहती है, तथा अमृत पीने से मनुष्य मर नहीं सकता) आप के चरणों में उपस्थित करूँ अथवा पाताल लोक में जाकर (अमृत-कुंड की रक्षा करने वाले) नागों को दल कर वहाँ से अमृत-कुंड मृत्यु-लोक में उठा लाऊँ अथवा भुवन-मंडल को फोड़ कर सूर्य को बाहर निकाल कर जल्दी ही राहु को उसी जगह पर रख कर मूँद दूँ (ऐसा डर था कि यदि सवेरे तक लक्ष्मण जी की मूर्च्छा भंग न हुई तो वे मर जायँगे, अतः हनुमान जी ने कहा कि सूर्य को बाहर कर देंगे जिससे प्रातःकाल ही न होगा, इस तरह लक्ष्मण बचे रहेंगे)। अथवा लक्ष्मण जी को जिलाने के लिए देवताओं के वैद्य अश्विनी-कुमार को जबरदस्ती पृथ्वी पर ले आऊँ तब मैं आपका सेवक कहाऊँ। अथवा काल, को चूहे की भाँति पटक कर सब का पाप काट दूँ। मरने जीने के झंझट से सब को मुक्त कर दूँ। काल के मर जाने से फिर मौत आएगी ही कहाँ से? हे प्रभो, आपकी दया और प्रताप से मैं यह सब कुछ करने में कुछ भी

विलंब न करूँगा। इसलिए, अब, हे प्रभो मुझे वह आज्ञा दीजिए जिससे आपके मन को अच्छा लग सकूँ ॥८॥

सुनि हनुमंत-वचन रघुबीर—

शब्दार्थ—समीर-सुवन—वायु-पुत्र, हनुमान। ईश-आयसु—प्रभु की आज्ञा। कीस—बन्दर। बलप्रेम—बलशाली। आन्यो—ले आया। पलक परै न—पल भर भी देरी न हुई। मूलिका—संजीवनी बूटी। द्रोनाचल—द्रोण पर्वत। कुधर—पर्वत। कन्दुक ज्यों—गेंद की तरह। सपदि—तत्क्षण। सुदरसनपानि—विष्णु। जोहारे—वंदना की (जुहार—अभिवंदना)। हाँक—गर्जन।

भावार्थ—रघुवीर हनुमान जी का वचन सुन कर धीरज धर कर बोले—हे पवन-पुत्र हनुमान सत्य ही तुम सब कुछ करने के योग्य हो, पर इस समय वैद्य चाहिये। इस कार्य के लिए तुम ही सब प्रकार से योग्य हो। प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य करके वे परम बलशाली हनुमान वैद्य सुषेण को सोते हुए ही मकान सहित उठा कर पल भर में वहाँ ले आये। वैद्य सुषेण ने रामचन्द्र जी से विनय किया कि यदि रात में ही संजीवनी बूटी मिल जाय तो राजकुमार जी सकता है। यह सुनते ही हनुमान जी रामचन्द्र जी का स्मरण करते हुए संजीवनी जड़ी लेने के लिए चल दिए। रास्ते में कालनेमि को मार कर वे शीघ्र ही द्रोणागिरि पर पहुँच गये। द्रोणागिरि पर इधर उधर कई दिव्य औषधियाँ देखीं पर हनुमान जी असली जड़ी को न पहचान सके। तब उन्होंने पर्वत को शीघ्र ही गेंद की भाँति ऐसी फुर्ती से उठा लिया कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। वे उसे लेकर बड़े वेग से इस भाँति चल दिए जैसे विष्णु भगवान् हाथी की सहायता करने के लिए एक दम ही दौड़ पड़े थे। पर्वत लाकर रामचन्द्र को वन्दना की। तब

वैद्यराज ने जड़ी ले कर उपचार किया जिससे लक्ष्मण जी मूर्च्छा से जाग पड़े। कृपासिन्धु रामचन्द्र जी ने भाई को कंठ से लगाया और तमाम दुःख-द्वन्द मिट गया, सारी चिन्ता दूर हो गई। भालू और वानरों की सेना ऐसी हर्षित हुई जैसे मानों उन्होंने युद्ध-रूपी समुद्र को पार कर लिया हो, युद्ध विजय कर लिया हो। हनुमान जी फिर पर्वत को वहीं रख आए जहाँ से उठा कर लाए थे। तब रामचन्द्र जी सारी सेना सहित बार बार अपने सेवक की प्रशंसा करने लगे। देवता लोग प्रसन्नहृदय हो कर बाजे बजाने और फूल बरसाने लगे। तुलसीदास जी कहते हैं इस समाचार को पाकर राक्षस ऐसे भयभीत हुए जैसे उनके प्राण ही उड़ गए हों। प्रातःकाल होते ही ज्यों ही हनुमान जी ने गर्जना की त्यों ही लंका गढ़ में शोर होने लगा और खलबली मच गई ॥६॥

देखि सपुर परिवार जनक हिय हारेउ—

शब्दार्थ—हिय हारेउ—निराश। तुहिन—पाला। बनज-बन—कमल-वन। इसान-सरासन—शिव जी का धनुष। बान—बाण। बान—बाणासुर। दसकन्धर—रावण। अवनीतल—पृथ्वी तल। धनुघालक—धनुष को तोड़ने वाला। कन-कुलिस—हीरे की कनी। सोम—चन्द्रमा। मनोजनि—कामदेव। सकृत—एक बार। बिछोहई—जुदा हो जाता है, अलग हो जाता है।

भावार्थ—जब कोई राजा शिव के धनुष को तोड़ने में समर्थ न हुआ और इस तरह राजा जनक का प्रण, जो शिव धनुष तोड़ेगा, उससे सीता का व्याह करूँगा, पूरा होता न दीखता था, तब राजा जनक को परिवार तथा मिथिला-वासियों सहित निराश; और पाला पड़ने से जिस प्रकार कमल शोभा-हीन हो जाते हैं उसी प्रकार धनुष के न उठने से सब राजाओं को उदास देखकर

विश्वामित्र जी ने जनक से कहा—आज्ञा कीजिए, ज़रा सूर्यवंश के सूर्य श्रीरामचन्द्र भी शिव जी के धनुष को देखना चाहते हैं। राजा जनक बोले—मुनिवर, यद्यपि आपके वचनों से पृथ्वी और सुमेरु पर्वत भी हिल सकते हैं, आपके वचनों में सन्देह नहीं किया जा सकता, तथापि उचित आचरण वही है जिसको पाँच आदमी भला कहें। आपको विदित ही है कि शिवजी के इस महान धनुष को देख कर बाणासुर बाण की तरह और रावण चुपके से दुम दबा कर भाग गया है। आप ही बतावें, इस समय में पृथ्वी-तल पर इन के समान शूरवीर कौन है? पार्वती जी के मन के समान अचल, इस धनुष को एक शिवजी ही तोड़ सकते हैं, पर वे एक नारी-व्रत के पालने वाले हैं। ऐसे धनुष को आप सुकुमार राजकुमार को दिखाने के लिए कह रहे हैं। क्या भला, कभी सुकुमार शिरीष का फूल हीरे की कठोर कनी को बेध सकता है? इन का रोम-रोम चन्द्रमा और कामदेव की शोभा को तिरस्कृत करता है। तो क्या अब आप जान बूझ कर इस सोहनी मूर्ति को मलिन वदन देखना चाहते हैं। हे मुनिराज ऐसा न करिए? मुनि विश्वामित्र जी ने हँस कर कहा—राजन्, यह मूर्ति मलिन नहीं होगी। वरन् पहले से अधिक शोभित और सुहावनी होगी जिसको एक बार स्मरण करने से ही मोह और पाप छूट जाते हैं ॥१०॥

तजे भोग जिमि रोग लोग—

शब्दार्थ—तजे—छोड़ दिए। अहिन—सर्प समूह। मनु—मन। बपु—शरीर। अरंभेउ—आरम्भ किया। तपु—तप। निमज्जन—स्नान। असन—भोजन। गवनहिं—व्यतीत हो जाते थे। मौर—मोर।

भावार्थ—(पार्वती जी ने शिवजी के लिए जब कठोर तप आरम्भ किया तो) उन्होंने भोग को रोग के समान और लोगों को सर्पों के

समान छोड़ दिया। और मुनियों के मन को भी अगम तप में ध्यान लगाया अर्थात् ऐसा तप साधन किया जो मुनियों के ख्याल में भी भी न आ सकता था।

जो शरीर (कोमलता के कारण) वस्त्राभूषण भी स्पर्श करने से सकुचाता था उस सुकुमार शरीर से पार्वती जी ने महादेव को पाने के लिए कठोर तप करना आरम्भ किया।

पार्वती जी तीनों समय (सुबह, मध्याह्न, शाम) स्नान कर शिव जी का पूजन करती हैं। उनके नियम, उनके व्रत और उनके प्रेम को देखकर सब सज्जन उनकी प्रशंसा करते हैं।

पार्वती जी नींद, भूख और प्यास की कुछ परवाह नहीं करतीं, उनके लिए दिन रात समान ही हैं। उनके नेत्र स्नेह के कारण अश्रुपूर्ण हैं, मुख से महादेव जी का ही नाम निकलता है। शरीर पुलकित हो रहा है और हृदय में महादेव जी विराजमान हैं।

पार्वती जी कभी कन्द-मूल खाती थीं, कभी जलपान करके ही रहती थीं और कभी वायु सेवन करके ही दिन व्यतीत कर देती थीं। कभी बेल के सूखे पत्ते खाकर दिन बिता देती थीं।

परन्तु पीछे उन्होंने पत्ते भी छोड़ दिए और इसीसे उनका नाम 'अपर्णा' हुआ। उनकी नवीन धवल कीर्ति सब लोकों में परिपूर्ण हो गई।

मुनिश्रेष्ठ तथा मुनि-पत्नियाँ ('बहुत' के स्थान पर मूल में 'बहु' पाठ चाहिए) पार्वती जी के इस घोर तप को देख कर उनकी सराहना करती हैं। और कहती हैं कि ऐसा तप कभी किसी ने न कहीं देखा है और न कहीं सुना ही है।

पार्वती जी की इस प्रकार करुणाजनक दशा देखकर शिव जी को बहुत दुख हुआ। वे हृदय में सोचने लगे कि मैं आशुतोष

(शीघ्र ही प्रसन्न होने वाला) प्रसिद्ध हूँ पर मेरा ऐसा कठोर स्वभाव है ॥५२॥

अवधेश के द्वारे सकारे—

शब्दार्थ—अवधेश—अवध + ईश अर्थात् राजा दशरथ। सकारे—सवेरे। अवलोकि—देखकर। हौं—मैं। सोच-विमोचन—शोक को दूर करने वाले। ठगि सी रही—मुग्ध हो गई। मनरंजन—मन को लुभाने वाली। रंजित अंजन—कज्जल लगे हुए। नयन—नेत्र। सुखंजन जातक से—सुंदर खंजन के बच्चे जैसी। शशि—चन्द्रमा। समसील—बराबर। उभय—दोनों। सरोरुह—कमल। विकसे—खिले।

भावार्थ—अयोध्या-वासिनी एक स्त्री अपनी सखी से कहती है) हे सखी, मैं आज सवेरे महाराज दशरथ के महल के द्वार पर गई थी। उसी समय राजा अपने पुत्र रामचन्द्र को गोद में लेकर बाहर निकले। शोक को दूर करने वाले उन रामचन्द्र जी को देख कर मैं मुग्ध सी हो गई। जो उन्हें (उनकी ऐसी शोभा)देख कर मुग्ध न हों उनका जीवन वृथा है। हे सखी, वे मन को आनन्दित करने वाली, कज्जल लगी हुई, सुन्दर खंजन पक्षी के बच्चे की सी आँखें देखने देखने में ऐसी जान पड़ती हैं मानों चन्द्रमा में एक ही आकार के दो नील कमल खिले हों ॥१॥

तन की दुति स्याम—

शब्दार्थ—तन—शरीर। दुति—आभा, कान्ति। स्याम सरोरुह—नील कमल। कंज—कमल। मंजुलता—कोमलता, सुंदरता। भूरि—बहुत से। अनंग—कामदेव।

भावार्थ—श्रीरामचन्द्र जी के शरीर की कांति नीले कमल की तरह है। उनकी आँखों की सुन्दरता के सामने कमल की सुन्दरता फीकी लगती है। श्रीरामचन्द्र जी का शरीर धूल से

भरा होने पर भी अत्यन्त सुन्दर जान पड़ता है और वह सुन्दर शरीर कामदेव की अत्यन्त अधिक शोभा को भी धूल में मिला देता है अर्थात् लज्जित करता है। उनके छोटे छोटे दाँतों की चमक बिजली की चमक की तरह है। वह खेल करते हुए किलकारियाँ मारते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि महाराज दशरथ के ये चारों बालक मेरे मन-रूपी मन्दिर में सदा विहार किया करें ॥२॥

बरदंत की पंगति कुन्द कली—

शब्दार्थ—बर—श्रेष्ठ, सुन्दर। कुन्द कली—जुही की कली। अधराधर—दोनों ओष्ठ। पल्लव—कोमल पत्ते। चपला—बिजली। लोल—चंचल। बलि जाऊँ—मैं अपना सर्वस्व न्योछावर करता हूँ।

भावार्थ—कुन्द की कली के समान उनके सुन्दर दाँतों की कतारों की, हँसते समय कोमल लाल पत्तों के समान खुलने वाले होंठों की, बादलों में चमकने वाली बिजली के समान उनके साँवले शरीर पर लटकने वाली अमोल मोतियों की मालाओं की, मुख पर लटकने वाली उनके घुँघरीले बालों की लटों की, गालों पर हिलने वाले कुंडलों की, तथा उनकी मधुर तोतली बोली की मैं तुलसीदास बलैया लेता हूँ; तुलसीदास उनपर अपने प्राणों को न्योछावर करते हैं ॥३॥

कीर के कागर ज्यों नृप चीर—

शब्दार्थ—कीर—तोता। कागर—पंख। नृप चीर—राजसी वस्त्र। उप्पम—उपमा। औध—अयोध्या। मगवास के रूख—रास्ते के वृक्षों के समान। पंथ के साथ—रास्ते के साथी। लोग-लुगाई—स्त्री-पुरुष। पुनीत—पवित्र, पतिव्रता। राजिवलोचन—कमल नेत्र। बटाऊ—यात्री, पंथी, राही, मुसाफ़िर।

भावार्थ—इस पद्य में रामचन्द्र जी के त्याग का वर्णन है। उन्होंने वन जाते समय राजसी-वस्त्र और आभूषण इस प्रकार (बिना कष्ट के) त्याग दिए जिस प्रकार (वसंत ऋतु में) तोता अपने पंख गिरा देता है। उन्होंने अयोध्या को रास्ते के वृक्ष के समान और वहाँ रहने वाले स्त्री-पुरुषों को रास्ते के साथी के समान छोड़ दिया। उनके साथ में सुन्दर भाई लक्ष्मण और पतिव्रता सीता जी इस प्रकार शोभा दे रहे थे मानों धर्म और क्रिया देह धारण कर उनके साथ चल रहे हों। कमल के समान नेत्र वाले श्री रामचन्द्र जी अपने पिता का राज्य एक सामान्य यात्री के समान त्याग कर चल दिए। तात्पर्य यह कि राम जी को राजसी वस्तुएँ एवं सुख छोड़ने में तनिक भी क्लेश न हुआ ॥४॥

पुरते निकसी रघुबीर बधू—

शब्दार्थ—पुरते निकसी—अयोध्या से बाहर निकलीं। रघुबीर-बधू—सीता जी। मग—मार्ग। डग द्वै—दो कदम। भाल—ललाट, मस्तक। कनो जल की—पसीने की बूँदें। पुट—दोनों। मधुर—मीठे, कोमल। अधर—होंठ। पर्णकुटी—पत्तों की झोंपड़ी, कुटिया, आश्रम। तिय—स्त्री। आतुरता—व्याकुलता, घबराहट। चारु--सुन्दर। चलीं जल च्वै--आसुओं की बूँदें टपकने लगीं।

भावार्थ—सीता जी (पहले पहल इस प्रकार पैदल) अयोध्या से बाहर निकलीं थीं (रामचन्द्र जी के समान वीर पुरुष की पत्नी होने के गर्व से) धैर्य धारण करके वे पृथ्वी पर दो ही चार पग चलीं; इतने ही परिश्रम के कारण उनके ललाट पर पसीने की बूँदें झलकने लगीं, और उनके दोनों अधर-पल्लव (होंठ) सूख गए। अतः वे पूछने लगीं, कि महाराज, अभी कितनी दूर और चलना है। कहाँ पर पत्तों की कुटिया बनाई जायगी ? सीता जी की इस प्रकार

व्याकुलता देख कर भगवान् रामचन्द्र के सुन्दर नेत्रों से आँसुओं की बूँदें टपकने लगीं ॥५॥

जल को गये लक्खन हैं लरिका =

शब्दार्थ—परिखौ—प्रतीक्षा करो। पिय—प्रीतम। घरीक—घड़ी भर, थोड़ी देर। ह्वै ठाड़े—खड़े हो जाइए। पसेउ—पसीना। बयारी—हवा। पखारिहौं—मैं धो दूँगी। भूभुरि—गरम धूल। डाढ़े—जले हुए; तप्त हुए। श्रम जानि कै—थका हुआ जान कर। कंटक—काँटा। काढ़े—निकालते रहे। नाह—प्रीतम, प्राणनाथ। बारि बिलोचन बाढ़े—नेत्र आनन्दाश्रु से पूर्ण हो गए।

भावार्थ—सीता जी कहने लगीं—प्राणनाथ! लक्ष्मण जी पानी लेने गए हैं। उनकी प्रतीक्षा करने के लिए थोड़ी देर तक इस वृक्ष की छाया में खड़े हो जाइए, क्योंकि अभी वे बालक हैं। इतनी देर में मैं आपका पसीना पोंछ कर आप पर अपने वस्त्र से पंखा झल दूँगी और मार्ग की जलती हुई धूल से आपके झुलसे हुए पैरों को धो दूँगी। तुलसीदास जी कहते हैं कि इन वचनों से भगवान् रामचन्द्र जी ने जान लिया कि वास्तव में सीता जी थक गई हैं इसलिए वे थोड़ी देर विश्राम का उपाय ढूँढ रही हैं। इस विचार से वे उस स्थान पर बैठ कर बहुत देर तक अपने पैरों में गड़े हुए काँटे निकालते रहे। इधर अपने प्राणनाथ का ऐसा प्रगाढ़ प्रेम देख कर मैथिली का हृदय भर आया और उनके नेत्रों से आनन्द के आँसू झरने लगे ॥६॥

सीस जटा उर बाहु बिसाल—

शब्दार्थ—उर—वक्षस्थल। बिलोचन—नेत्र। तून—तरकस। सरासन—(सर-आसन) धनुष। रावरे—तुम्हारे।

भावार्थ—गाँव की स्त्रियाँ सीता जी से पूछती हैं कि जिनके

सिर पर जटाएँ हैं, जिनका वक्षस्थल और बाहु विशाल हैं, नेत्र लाल हैं और भौंहें कुछ तिरछी सी हैं, जो धनुष बाण और तरकस धारण किए हुए वन मार्ग में शोभा दे रहे हैं, आदर पूर्वक स्वभाव से ही बार बार जिनकी ओर देखने मात्र से ही तुम्हारी तरह ही जो हमारे मन को भी मोहित कर रहे हैं, ऐसे साँवले शरीर वाले आपके कौन (क्या) लगते हैं ॥७॥

कतहुँ विटप भूधर उपारि—

शब्दार्थ—विटप—वृक्ष। भूधर—पर्वत। उपारि—उखाड़े। अरि-सेन—दुश्मन की सेना पर। बरखत—वर्षा करते हैं। मर्दि—मींजकर, मसल कर। करष्पत—खींचते हैं। चरनचोट—लातों की मार, पदाघात। चटकन—थप्पड़। विकट—भयंकर। कटक—सेना। विद्दरत—विदीर्ण करते हैं, संहार करते हैं। वारिद—बादल। गज्जत—गरजते हुए। लंगूर—लाँगूल, पूँछ। भट—योद्धा। उच्चरत—उच्चारण करते हैं। पवन-नंदन—हनुमान जी। जुद्ध—युद्ध।

भावार्थ—हनुमान जी कहीं पर पेड़ और पर्वत उखाड़ कर शत्रु सेना पर प्रहार करते हैं, कहीं कहीं घोड़े को घोड़े पर पटक कर मसल देते हैं, और हाथियों को खींचते हुए चले जाते हैं, कहीं उनकी लातों की मार, थप्पड़ और नखों की खरोंच शत्रु की छाती और सिर पर पड़ती है। कहीं पर बादलों की तरह गरजते हुए वीर हनुमान जी राक्षसों की भयंकर सेना का संहार करते हैं, कहीं पर योद्धाओं को पूँछ में लपेट कर और पृथ्वी पर पटक कर रामचन्द्र जी का जय-जयकार करते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि युद्ध में अटल पवन के पुत्र हनुमान जी क्रुद्ध हो कर इस प्रकार कौतुक करते हैं ॥८॥

परिशिष्ट

पद्य-संग्रह में निर्दिष्ट पौराणिक कथाएँ

वेश्या (गणिका)

सतयुग में परशु नामक एक वैश्य था। युवावस्था में उसकी मृत्यु हो गई। उसकी नवयुवती स्त्री ने उसकी मृत्यु के बाद वेश्या-वृत्ति शुरू कर दी। एक दिन एक बहेलिया तोते बेचता हुआ उसके द्वार पर आया। वेश्या ने एक तोता खरीद लिया। कोई संतान न होने से वेश्या ने तोते को पुत्र की तरह पालना और उसे राम-नाम पढ़ाना शुरू किया। तोते को पढ़ाने के बहाने जो वह राम का नाम लेती थी, उसी से वह तर गई।

गज—ग्राह

इन्द्रद्युम्न नामक राजा अगस्त्य ऋषि के शाप से हाथी बन गया था। एक बार वह हथिनियों के साथ विहार करता हुआ त्रिकूट पर्वत के पास एक सरोवर में स्नान करने गया। उस सरोवर में एक बड़ा बलवान् ग्राह रहता था। यह पहले हूहू नाम का गंधर्व था। देवल ऋषि के शाप से ग्राह हो गया था। स्नान करते समय हाथी के पैर को ग्राह ने पकड़ लिया और वह उसे जल में खींच कर ले चला। हाथी ने बाहर निकलने की बहुत कोशिश की पर ग्राह के सामने उसकी एक न चली। निराश हो गज ने कमल-नाल सूँड में पकड़ कर भगवान् को पुकारा। भगवान् ने तुरन्त

आकर सुदर्शन चक्र से ग्राह का सिर काट कर हाथी को बचाया। इस प्रकार हाथी और मगर दोनों बैकुंठ-धाम सिधारे।

सुदामा

सुदामा द्राविड़ देश का रहने वाला ब्राह्मण था। यह श्रीकृष्ण का गुरुभाई था। यह अतिदीन ब्राह्मण था। सुदामा की स्त्री ने दरिद्रता से महादुखी होकर उसे श्रीकृष्णचन्द्र के पास भेजा और भेंट के लिए थोड़े से चावल एक कपड़े में बाँध कर दिये। अपने मित्र सुदामा से मिलकर कृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और बहुतसा धन-धान्य देकर उन्होंने उसके दुःख-दारिद्रय को दूर कर दिया।

अजामिल

अजामिल बड़ा पापी था। एक दिन वह बाहर गया हुआ था। उसी समय उसके घर पर कुछ साधु आ पहुँचे। अजामिल की गर्भवती स्त्री ने उनका खूब आतिथ्य किया। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा, तू पुत्रवती हो। और यह भी कहा तुम अपने बेटे का नाम नारायण रखना। स्त्री ने मान लिया। निदान पुत्र होने पर उसका नाम नारायण ही रक्खा गया। मरते समय अजामिल ने अपने पुत्र को 'नारायण' कह कर पुकारा। इस पर विष्णु के दूत उसे बैकुंठ-धाम को ले गए।

अंबरीष

अंबरीष राजा विष्णु का बड़ा भक्त था। एकादशी का व्रत कर द्वादशी के दिन ब्राह्मण भोजन करा चुकने के बाद ही यह पारण करता था। एक समय इसने ऋषि दुर्वासा को निमंत्रण दिया। वे स्नान करने गये। राजा ने द्वादशी थोड़ी जान ब्राह्मणों

की आज्ञा से चरणोदक ले भोजन कर लिया। जब दुर्वासा जी को यह मालूम हुआ तो वे अत्यन्त क्रोधित हुए और उन्होंने अपनी जटाओं में से एक बाल तोड़ कर पृथ्वी पर पटका। उससे कृत्या नामक एक महा भयानक राक्षसी उत्पन्न हुई। वह राक्षसी राजा को मारने के लिए दौड़ी। भय से राजा अचेत हो गया। पर उधर भक्त की रक्षा के लिए विष्णु भगवान का सुदर्शन चक्र छूटा। वह दुर्वासा ऋषि के पीछे दौड़ा। इस पर ऋषि भागे और अन्त में कहीं शरण न मिलने पर विष्णु भगवान् की सलाह से राजा अंबरीष के पास गये। राजा ने तुरन्त ही ऋषि को क्षमा कर दिया एवं आदर-सत्कार पूर्वक उन्हें भोजन कराया।

बलि-वामन

बलि नामक दैत्य राजा बड़ा धार्मिक और दानी था। इस की दानशीलता और इसके धर्म-कर्म को देख कर देवराज इन्द्र भी भयभीत हो गए थे। देवताओं के भय को हरण करने के लिए भगवान विष्णु ने राजा बलि को छलने की सोची। निदान वे वामनरूप से राजा के यहाँ गये और उससे याचना की। राजा बलि, जो यज्ञ में दीक्षित बैठा था, उन्हें मुँहमाँगा वरदान देने को उद्यत हो गया। फल यह हुआ कि भगवान ने उससे तीन पग पृथ्वी दान में माँग ली और फिर दो ही पैर में सब पृथ्वी नाप ली। तो भी राजा बलि नहीं घबड़ाया। इस पर प्रसन्न होकर भगवान ने उसे पाताल लोक का अमर राज्य प्रदान किया एवं उसे नित्य दर्शन देने की बात स्वीकार की।

अहल्या

एक समय ब्रह्मा जी ने अपनी इच्छा से एक कन्या उत्पन्न की।

उसका नाम अहल्या पड़ा। वह बड़ी रूपवती थी। उसकी सुन्दरता को देखकर देवता तक मोहित हो गये। ब्रह्मा जी उस कन्या को ऋषि गौतम के यहाँ रखकर चले गये। कुछ दिन पीछे ब्रह्मा ने ऋषि से उस कन्या को फिर माँगा। ऋषि ने लाकर उसे ब्रह्मा जी के सामने उपस्थित कर दिया। इस पर ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उस कन्या को गौतम ऋषि से ब्याह दिया। इन्द्र को यह बात अच्छी न लगी। एक दिन जब ऋषि अपनी कुटिया में न थे उस समय इन्द्र ऋषि गौतम का वेष बनाकर अहल्या के पास गया और उससे रति करने लगा। इसी समय गौतम ऋषि भी आ पहुँचे। उन्होंने इन्द्र और अहल्या दोनों को शाप दिया। ऋषि के शाप से अहल्या पाषाणी हो गई और त्रेता युग में जब रामावतार हुआ तब श्रीरामचन्द्र जी के चरणों की रज से उसका शाप छूटा और वह पुनः स्त्री हुई।

यमलार्जुन

ये दो वृक्ष थे। पूर्व-जन्म में ये दोनों नल--कूबर नाम के कुवेर के पुत्र थे। ये शिवजी की सेवा करने से धनवान हुए थे। एक दिन ये स्त्रियों को कैलाश में ले गये और वहाँ मद पीकर और नग्न होकर जलक्रीड़ा करते हुए स्नान करने लगे। इस बीच वहाँ नारद जी जा पहुँचे। उनको देख स्त्रियों ने तो वस्त्र पहन लिए पर ये जलक्रीड़ा ही करते रहे। इस पर नारद जी ने इन्हें शाप दिया कि तुम जाकर वृक्ष बनो। अन्त में अनुनय-विनय पर ऋषि ने यह भी कह दिया जाओ व्रज में रहो। कृष्णावतार होने पर तुम्हारा उद्धार होगा। अतः श्रीकृष्ण ने इन दोनों का भी उद्धार किया। माता यशोदा ने ऊधम के कारण कृष्ण को ऊखल से

बाँध दिया। उन्होंने उसे ले जाकर दोनों अर्जुनवृक्षों के बीच में अटका दिया। फिर इतनी ज़ोर से खींचा कि वे दोनों जड़ से उखड़ पड़े और उनके स्थान पर नल-कूबर निकल आये और भगवान् की प्रार्थना कर अपने स्थान को चले गए।

कालीनाग

यह एक विषधर नाग था। गरुड़ के भय से यह नागों के देश रमणक द्वीप को छोड़ कर वृन्दावन में आ बसा था। इसके रहने से, इसके प्रबल विष के कारण, यमुना का जल चार कोस तक खौलता था। इसी के भय से कालीदह में कोई प्रवेश करने का साहस नहीं करता था। श्रीकृष्ण एक बार गेंद निकालने के बहाने उस कालीदह में कूद पड़े। कृष्ण ने जल ही में उस काली-नाग का मान मर्दन किया। जब वह अत्यन्त त्रस्त हो गया तो कृष्ण की आज्ञानुसार वह कालीदह का त्याग कर के फिर रमणक द्वीप को लौट गया। इस प्रकार उसके विष से फिर यमुना का तट और प्रवाह सुरक्षित हुए एवं ब्रजवासियों ने आनन्द मनाया।

दावानल-पान

जब कालीनाग को नाथ कर श्रीकृष्ण यमुना से निकले तो गोप-गोपियों ने बहुत आनन्द मनाया। श्रीकृष्ण की सलाह से सभी वृन्दावन-वासी गौओं-सहित उस रात यमुना के किनारे रहे। आधी रात को जंगल में आग लगी और उससे डर कर गोप-गोपियों ने चिल्लाना शुरू किया। तब भी कृष्ण ने सब को आँखें बंद करने को कहा। सब के आँखें बंद करने पर श्रीकृष्ण उस दावानल को पी गए।

भृगु की लात

एक बार भृगु ऋषि यह परीक्षा करने को निकले कि त्रिदेव में कौन बड़ा है। उन्होंने ब्रह्मा के यहाँ जाकर उन्हें गाली दी तो ब्रह्मा उन्हें मारने को दौड़े। फिर वे महादेव के यहाँ गए। वहाँ भी ऐसा ही हुआ। जब वे विष्णु के यहाँ पहुँचे तो देखा कि वे शेष-शय्या पर पड़े हैं। उन्होंने समझा विष्णु अपने बड़प्पन के गर्व के कारण मेरे आने पर भी इसी प्रकार पड़े हैं। अतः क्रोधित हो ऋषि ने उनकी छाती में लात मारी। भगवान विष्णु, जो शयन कर रहे थे, जाग पड़े और ऋषि को देख कर एकाएक उठ बैठे और हाथ जोड़ कर बोले—क्षमा हो ऋषिराज, कहीं आपके पैर में अधिक चोट तो नहीं आई। इस व्यवहार पर ऋषि बहुत संकुचित और लज्जित हुए तथा उन्होंने विष्णु का बड़प्पन स्वीकार किया। विष्णु ने भी ऋषि के आघात का चिह्न अपने वक्षःस्थल पर उसी भाँति धारण कर लिया।

धेनुक

यह एक राक्षस था, जो गधे के रूप में वृन्दावनान्तर्गत तालवन में रहता था। इसे बलराम जी ने मारा था। इस पर धेनुक के साथी राक्षसों से उनका भारी संग्राम छिड़ा जिस में कृष्ण और बलराम विजयी हुए। धेनुक के मारे जाने से वह प्रदेश निष्कंटक हो गया।

शंखासुर-सांदीपन

पंचजन नामक असुर शंख रूप से समुद्र में रहता था। श्रीकृष्ण के गुरु ऋषि सांदीपन का बेटा समुद्र में बह गया। ऋषि ने